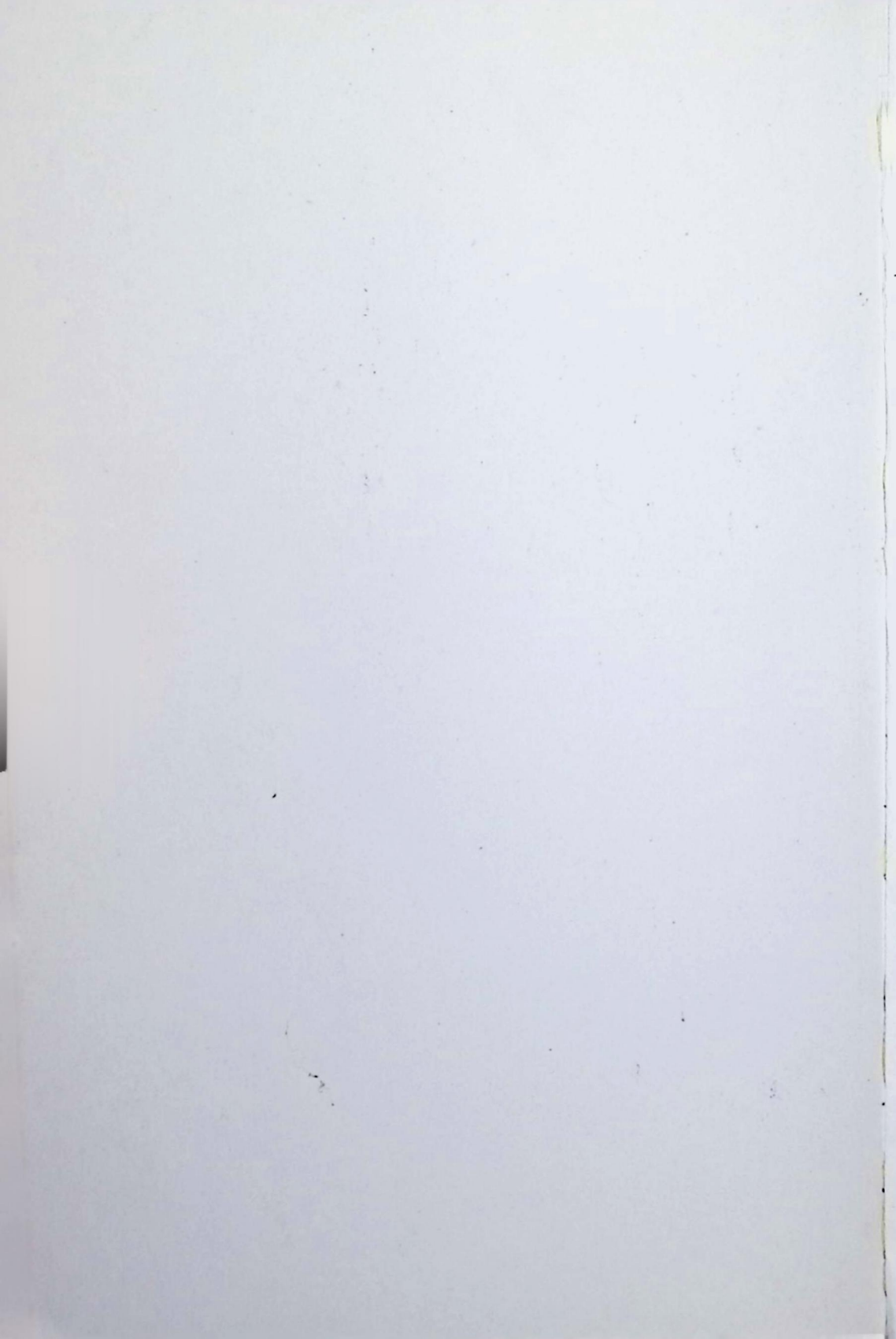




रहीम ग्रन्थावली

सम्पादक
विद्यानिवास मिश्र
गोविन्द रजनीश





✓ 16.1F

रहीम ग्रन्थावली

विद्यार्थिनाम लिपि

संयुक्त प्रकाशक
नवीन प्रकाशक

34475



रहीम ग्रन्थावली

रहीम की सम्पूर्ण कृतियों का प्रामाणिक संस्करण
विस्तृत भूमिका और जीवनचरित के साथ



राष्ट्रकवि विद्यानिवास मिश्र

200 611 मैत्री विद्यापीठ, जयपुर 322 004

01425252111 104- : 0142525252111 104- : जयपुर

सम्पादक

विद्यानिवास मिश्र

संयुक्त सम्पादक

गोविन्द रजनीश

34475



वाणी प्रकाशन

विद्याभार मंडिर

विद्याभार मंडिर का विज्ञान विभाग है।
यहाँ के विद्यार्थियों को विज्ञान के क्षेत्र में



वाणी प्रकाशन

4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली 110 002

फ़ोन : +91 11 23273167 फ़ैक्स : +91 11 23275710

शाखाएँ

अशोक राजपथ, पटना 800 004, बिहार

कॉफ़ी हाउस कैम्पस, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद 211 001, उत्तर प्रदेश

महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा 442 001, महाराष्ट्र

www.vaniprakashan.com

marketing@vaniprakashan.in

sales@vaniprakashan.in

Raheem Granthawali

Edited by Vidyasivas Mishra, Govind Rajneesh

ISBN : 978-93-87024-86-1

Granthawali

© प्रकाशकाधीन

पेपरबैक संस्करण 2004, 2010, 2018

पेपरबैक चतुर्थ संस्करण 2022

मूल्य : ₹ 235

इस पुस्तक के किसी भी अंश को किसी भी माध्यम में प्रयोग करने के लिए प्रकाशक से लिखित अनुमति लेना अनिवार्य है।

सिटी प्रेस, दिल्ली-110 095 में मुद्रित

वाणी प्रकाशन का लोगो मक़बूल फ़िदा हुसैन की कृची से

34475





आजी प्रकाशन

२०२, २०२, २०२, २०२, २०२, २०२

२०२ - २०२ २०२ २०२ २०२ २०२

२०२

२०२ २०२, २०२ २०२ २०२, २०२

२०२ २०२ २०२, २०२ २०२ २०२, २०२ २०२

२०२ २०२ २०२ २०२ २०२ २०२

२०२ २०२ २०२ २०२ २०२ २०२

२०२ २०२ २०२ २०२ २०२ २०२

२०२ २०२ २०२ २०२ २०२ २०२

२०२ २०२ २०२ २०२ २०२ २०२

२०२ - २०२ २०२ २०२ २०२ २०२

२०२ २०२

२०२ २०२

२०२ २०२ २०२ २०२ २०२ २०२

२०२ २०२ २०२ २०२ २०२ २०२

२०२ २०२

२०२ २०२ २०२ २०२ २०२ २०२

२०२ २०२ २०२ २०२ २०२ २०२



प्राक्कथन

‘रहीम-ग्रन्थावली’ ‘रसखान-रचनावली’ के बाद एक विशेष ग्रन्थमाला के क्रम में हाथ में ली गयी। मध्यकाल के बहुत से ऐसे कवि हैं, जिनकी काव्यभूमि बड़ी व्यापक है और जिनकी संवेदना जनमन-स्पर्शिनी है, पर ये कवि लोकप्रिय होते हुए भी काव्यजगत् में अभी उचित रूप में समादृत नहीं हुए हैं, क्योंकि इनकी ऐतिहासिक भूमिका को ठीक तरह समझा नहीं गया है। इन कवियों की प्रमुख ऐतिहासिक भूमिका यह है कि इन्होंने मज़हब से ऊपर उठकर मानव भाव को परखा है और दरबारी परिवेश में पले होकर भी जनजीवन में ये पगे हुए हैं। रहीम की रचनाएँ कई बार कई स्थानों से छपीं, जिनका विवरण अन्त में दे दिया गया है, पर अभी तक समग्र संकलन नहीं छपा था, इसलिए पूर्व सामग्री को समाविष्ट करते हुए नूतन सामग्री (जो पांडुलिपियों से प्राप्त हुई) जोड़कर यह संकलन तैयार किया गया है। इसमें विस्तृत भूमिका और शब्दार्थ टिप्पणी जोड़ी गयी हैं।

पूर्व प्रकाशित सामग्री का बहुत बड़ा भाग हमें आगरे के चिरंजीव पुस्तकालय से प्राप्त हुआ, इसके लिए हम श्री देवराज पालीवाल के कृतज्ञ हैं। संकलन डॉ. गोविन्दप्रसाद शर्मा रजनीश ने तैयार किया और विभिन्न स्रोतों से सामग्री लेकर उन्होंने परिश्रमपूर्वक जीवन-चरित भी भूमिका के रूप में प्रस्तुत किया। उन्हें मैं साधुवाद देता हूँ। वाणी प्रकाशन ने सुरुचिपूर्वक इसे प्रकाशित किया, उनके प्रति आभारी हूँ।

‘रहीम-ग्रन्थावली’ हिन्दी के एक बहुत बड़े पाठक समुदाय की आकांक्षा की पूर्ति है, हमें इसके प्रकाशन से बहुत परितृप्ति मिली है। हमें विश्वास है कि यह ग्रन्थावली रहीम के पुनर्मूल्यांकन के लिए प्रेरणा देगी।

—विद्यानिवास मिश्र

क्रम

9

काव्य-यात्रा

25

जीवन-वृत्त

59

कृतित्व

67

दोहावली

101

नगर शोभा

117

बरवै-नायिका-भेद

135

बरवै (भक्तिपरक)

145

शृंगार-सोरठा

149

मदनाष्टक

155

फुटकर पद

161

संस्कृत श्लोक

167

परिशिष्ट

काव्य-यात्रा

काव्य-यात्रा

भक्तियुग ने विशाल मानवीय बोध जगाया, इसी के कारण रहीम, रसखान जैसे कवि व्यापक भाव बोध के साझीदार हुए। लोगों ने मान लिया है कि भक्ति काल हिन्दू-नवजागरण का काल है। भक्ति काल को लोगों ने इस रूप में देखा ही नहीं कि वह सम्पूर्ण मानव के जागरण का काल है, मनुष्य के भीतर सोये हुए बड़े विराट् अनुराग के जागरण का काल है। इसीलिए वह हिन्दू को मुसलमान शासन के प्रतिरोध के भाव से नहीं भरता, वह इतना ही करता है कि हिन्दू और मुसलमान सब को किसी और शासन की प्रजा बनाता है, ऐसे शासन की प्रजा बनाता है जिसमें न हिन्दू रह जाता है न मुसलमान मुसलमान। शासन भी शासन नहीं रह जाता, वह प्रजा की इच्छा से शासित हो जाता है। भक्तियुग की यह भूमिका थी कि रहीम और रसखान जैसे शासक वर्ग के लोगों में महाभाव की आकांक्षा जगी, भक्ति से प्रेरित होकर बिना हिन्दू हुए, बिना वैरागी हुए भी उस अनुराग को वे साध लेते हैं जो विधिवत् दीक्षित विरक्त हिन्दू साधुओं के लिए भी आसानी से सुलभ नहीं है। इन कवियों ने भक्ति की वास्तविक भूमिका ठीक तरह से समझी। भक्तिकाल की वास्तविक भूमिका है साधारण व्यक्ति की साधारण मनोवृत्ति में असाधारण, अलौकिक की संभावना देखना। यह भूमिका लाचार करती है कि न केवल साधारण जन की भाषा, उसकी भंगिमा और उसके परिवेश में गहरे रंग जाओ, उसके मन को भी अपना मन बना लो। रहीम और रसखान ने यही किया। रहीम के अवध क्षेत्र में रहने के कारण अवधी का रंग अधिक गहरा है, हालाँकि उनकी सूक्तियों पर कबीर की भी छाप है, और कृष्ण भक्त कवियों में हरिराम व्यास और सूर की भी छाप है, परन्तु विशेष रूप से तुलसी के साथ उनका तादात्म्य भाषा और भाव, दोनों ही दृष्टि से अधिक गहरा है, दोनों ने एक दूसरे से लिया है। कहीं-कहीं तो दोनों के दोहे बिलकुल मिल जाते हैं, जैसे—

पात-पात को सींचिबो, बरी बरी को लोन।

तुलसी छोटे चतुरपन, कलि डहके कहु कोन।।

—तुलसी

पात-पात को सींचिबो, बरी बरी को लोन।

रहिमन ऐसी बुद्धि को, कहो डरैगो कोन ?

—रहीम

एक ओर तुलसी की सहज सरलता रहीम में संक्रान्त हुई है, जो जनजीवन के साथ गहरे लगाव से आयी है, दूसरी ओर फारसी और ब्रजभाषा के काव्य की बंकिमा पूरी

भावुकता के साथ उनके काव्य में संक्रान्त हुई है, इसके कारण रहीम की काव्य-यात्रा अपने समय की साहित्यिक काव्य-यात्राओं का संगम बन गयी है। रहीम को सम्पूर्णता में पहचानने का अर्थ होता है, सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी के साहित्यिक परिदृश्य को पहचानना।

पूरे हिन्दी साहित्य के इतिहास में रहीम एक अद्भुत व्यक्तित्व थे। इतना बड़ा शूरमा कि सोलह वर्ष की उम्र से लेकर बहत्तर वर्ष की उम्र तक निरन्तर कठिन लड़ाइयाँ जीतता रहा। इतना बड़ा दानी कि किसी ने कहा मैंने एक लाख अशर्फियाँ आँख से नहीं देखीं तो एक लाख अशर्फियाँ उसे दे दीं, और उसके साथ ही इतना विनम्र कि किसी कवि ने कहा कि देते समय ज्यों-ज्यों रहीम का हाथ उठता है त्यों-त्यों उनकी नज़र नीची होती जाती है और रहीम ने उत्तर दिया :

देनहार कोई और है भेजत हैं दिन रैन।

लोग भरम हम पर धरें यातें नीचे नैन।।

मुझे तो लाज आती है कि लोग भ्रमवश मुझे देनेवाला समझते हैं, जबकि सचाई यह है कि 'देनहार' कोई और है, वही दिन-रात भेजता रहता है। सहृदय ऐसे कि एक सिपाही की स्त्री के इस बरवै पर प्रसन्न हो गये :

प्रेम प्रीति को बिरवा चलेहु लगाय।

सींचन की सुधि लीजै मुरझि जाय।।

और उसे भरपूर धन देकर उसकी नवागत वधू के पास भेज दिया, इसी छन्द में पूरा ग्रन्थ लिख डाला। ऐसे ग्रणग्राही की स्तुति में फ़ारसी और हिन्दी के अनेक कवियों ने स्तुतियाँ लिखीं। जिनमें केशवदास, गंग, मंडन हरनाथ, अलाकुली खाँ, ताराकवि, मुकुन्द कवि, मुल्ला मुहम्मद रजा नवी, मीर मुदर्रिस माहवी हमदानी, यूलकुलि बेग उर्फ़ी, मुल्ला हयाते जीलानी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। चरित्रवान ऐसे कि एक रूपवती ने इनसे कहा कि तुम मुझे अपने जैसे पुत्र दो और इन्होंने उसकी गोद में अपना सिर डाल दिया, कहा, 'एक तो पुत्र हो, न हो, फिर हो तो कैसा हो, इससे अच्छा यही है कि मैं तुम्हारा पुत्र बन जाऊँ।' भाषाओं के विद्वान् ऐसे कि अरबी, फ़ारसी, उर्दू, तुर्की, संस्कृत इन सब में रचनाएँ कीं और इनमें से प्रत्येक से दूसरी भाषा में हाल के हाल अनुवाद करने में कुशल, प्रसिद्ध ग्रन्थ 'बाबरनामा' का तुर्की से फ़ारसी में अनुवाद अपनी युवावस्था में ही इन्होंने पूरा कर दिया था। अभागे ऐसे कि बचपन में बार मरे, मारे-मारे फिरे, अकबर ने इन्हें अपने संरक्षण में लिया, अकबर के बड़े विश्वासपात्र बने और अन्त में जहाँगीर और शाहजहाँ दोनों के द्वन्द्व में ऐसे पिसे कि साम्राज्य की सेवा का पुरस्कार यह मिला कि कैद में डाले गये और कैद में ही उनके पास उनके प्रिय पुत्र दाराब खाँ का सिर कटवाकर और एक बर्तन में रखवाकर भेजा गया, यह कहकर भेजा गया कि बादशाह ने तरबूज भेजा है, रहीम ने बस आँसू भरे नेत्रों से आसमान की ओर देखा आर कहा कि हाँ, यह तरबूज है, अपने

जीवन-काल में स्वजनों की ही मृत्यु देखी, पहले पत्नी गयी, दो-दो लायक लड़के गये, दो-दो लायक दामाद गये तथा पोते भी आँख के सामने मरवा डाले गये। इतने उलट-फेर के बाद भी ऐसे स्वाभिमानी कि कभी आन पर आँच आने नहीं दी, चाहे दुःख जितना भी भोगना पड़े।

रहिमन मोहि न सुहाय, अमि पियावै मान बिन।

बरु विष देइ बुलाय, मान सहित मरिबो भलो॥

और ऐसे गहरे प्रेमी कि जिनके भीतर निरन्तर आग लगी रही, पर धुआँ नहीं निकला।

अन्तर दाव लगी रहै, धुआँ न प्रगटै सोय।

कै जिय जानै आपनो या सिर बीती होय॥

यह आग बुझ-बुझ के सुलगती रही :

जे सुलगे ते बुझि गए, बुझे ते सुलगे नाहिं।

रहिमन दोहे प्रेम के बुझि के सुलगाहिं॥

भक्ति की धारा के ऐसे स्नातक कि उन्होंने अपना एक पूरा काव्य ही श्रीकृष्ण को अर्पित किया और जितनी सहजता के साथ उन्होंने श्रीकृष्ण विरह के चित्र खींचे हैं, वह यह कहने को विवश करता है : 'कोटिन हिन्दुन बारिए, मुसलमान हरिजनन पर'। एक ऐसा व्यक्तित्व जो अनुभव का भरा हुआ प्याला हो और छलकने के लिए लालायित हो, मूल के कुल के हिसाब से विदेशी पर हिन्दुस्तान की मिट्टी का ऐसा नमकहलाल कि उसने अपना मस्तिष्क चाहे अरबी, फारसी, तुर्की को दिया हो, पर हृदय ब्रजभाषा, अवधी, खड़ी बोली और संस्कृत को ही दिया, सारा जीवन राजकाज में बीता और बात उसने की आम आदमी के जीवन की। ऐसे व्यक्तित्व के बारे में बात करते समय बड़ी पीड़ा होती है कि सच्चे अर्थ में हिन्दुस्तानी रंग के इस कवि को कोई समुचित आदर नहीं मिला, रहीम का मज़ार उपेक्षित पड़ा है, वहाँ कोई उर्स नहीं होता, उनके नाम पर कोई अकादमी नहीं है और पठन-पाठन में भी उन्हें स्थान मिलता है तो हृद-से-हृद हाई स्कूल तक, ऐसा मान लिया गया है कि वे उपदेशप्रद दोहे-भर लिखते थे। उनकी जिस कविता को उपदेशप्रधान एवं नीतिपरक कहा जाता है, उसकी और जाँच नहीं हुई। जायसी को रामचन्द्र शुल्क मिले पर रहीम को कोई सहृदय समालोचन नहीं मिला।

मैंने जब रहीम के काव्य को पढ़ा तो मुझे लगा कि रहीम का पूरा जीवन चाहे राजसी विलास करते समय, चाहे दर-दर मारे फिरते समय, चाहे फतह करते समय, चाहे कुचालियों के विश्वासघात से शाहंशाह के क्रोध का पात्र होते समय, एक अवाँ था, जो भीतर ही भीतर दहकता रहा।

रहीम के बारे में कहानी मिलती है कि तानसेन ने अकबर के दरबार में पद गाया :

जसुदा बार-बार यों भाखै ।

है कोऊ ब्रज में हितु हमारो चलत गोपालहिं राखै ।।

और अकबर ने अपने सभासदों से इसका अर्थ करने को कहा। तानसेन ने कहा कि यशोदा 'बार-बार' अर्थात् पुनः-पुनः यह पुकार लगाती है कि है कोई ऐसा हितु जो ब्रज में गोपाल को रोक ले। शेख फैज़ी ने अर्थ किया, 'बार-बार' रो-रोकर यह रट लगाती है। खाने आजम कोका ने कहा, 'बार' का अर्थ दिन है और यशोदा प्रतिदिन यही रटती रहती है। अन्त में अकबर ने ख़ानख़ानाँ रहीम से पूछा। ख़ानख़ानाँ ने कहा कि तानसेन गायक हैं, इनको एक ही पद को अलापना रहता है, इसलिए इन्होंने 'बार-बार' का अर्थ पुनरुक्ति किया। शेख फैज़ी फ़ारसी के शायर हैं, इन्हें रोने के सिवा और क्या काम है। राजा बीरबल द्वार-द्वार घूमनेवाले ब्राह्मण हैं, इसलिए इनको बार-बार का अर्थ द्वार ही उचित लगा। खाने आजम कोका ज्योतिषी (नज्मी) हैं, उन्हें तिथि वार से ही वास्ता रहता है, इसलिए 'बार-बार' का अर्थ उन्होंने दिन-दिन किया, पर हुजूर, वास्तविक अर्थ यह है कि यशोदा का बाल-बाल अर्थात् रोम-रोम पुकारता है कि कोई तो मिले जो मेरे गोपाल को ब्रज में रोक ले। इस व्याख्या से न केवल रहीम की विदग्धता और साहित्य की समझ का प्रमाण मिलता है, इससे रहीम के उस गहरे हिन्दुस्तानी रंग का प्रमाण भी मिलता है, जो रोमांच को सात्त्विक भाव मानता है और रोम-रोम में ब्रह्माण्ड देखता है, जो शरीर के रोम जैसे अंग को भी प्राणों का सन्देशवाहक मानता है, जो वनस्पति-मात्र को विराट् अस्तित्व का रोमांच मानता है।

रहीम की जिन्दगी एक पूरा दुःखान्त नाटक है, बड़ा चढ़ाव-उतार है। बाप बैरम ख़ाँ अकबर ही की तरह एक बहुत बड़े कबीले के सरदार थे और उसका जन्म बदख़्शाँ (तुर्किस्तान) में हुआ था। वे सोलह वर्ष की आयु से ही हुमायूँ के साथ रहे और हुमायूँ को फिर से दिल्ली की राजगद्दी पर बिठाया। हुमायूँ के मरने पर ये अकबर के अभिभावक बने। जिस साल हुमायूँ मरे उसी साल लाहौर में रहीम का जन्म हुआ। रहीम की माँ अकबर की मौसी थी। अकबर से एक दूसरा रिश्ता भी था, बैरम ख़ाँ की दूसरी शादी बाबर की नतिनी सलीमा बेगम सुल्ताना से हुई थी। बैरम ख़ाँ के मरने के बाद अकबर के साथ सलीमा का पुनर्विवाह हुआ, पर भाग्य का फेर, चुगलखोरों ने बैरम ख़ाँ और अकबर के बीच भेद डाला। बैरम ख़ाँ ने विद्रोह किया, परास्त हुए और उन्हें हुकम हुआ कि तुम हज़ करने जाओ। वे गुजरात पहुँचे थे कि उनका पूरा डेरा लुट गया, बैरम ख़ाँ कल्ल हुए और जैसे-तैसे उनके वफ़ादार साथी परिवार को, चार वर्ष के रहीम और बारह वर्ष की सलीमा सुल्ताना बेगम को अहमदाबाद लाये। रहीम जब पाँच वर्ष के थे, तब अकबर ने उन्हें अपने संरक्षण में लिया तथा उनकी शिक्षा-दीक्षा करायी और एक बड़े सरदार मिर्ज़ा अज़ीज कोकलताश की बहिन माह बानू बेगम से शादी करायी। कुल उन्नीस वर्ष की अवस्था में रहीम ने गुजरात में विजय प्राप्त की और वहाँ के सूबेदार नियुक्त हुए। गुजरात

में कई बार विद्रोह हुए, रहीम ने उन्हें कई बार दबाया। एक बार तो दस हज़ार सेना लेकर चालीस हज़ार सेना पर टूट पड़े और बिना किसी दूसरी सहायता के विजय प्राप्त की। इसके बाद तो फिर सिन्ध, अहमदनगर और दक्षिण के दूसरे राज्यों पर इन्होंने विजय प्राप्त की, पर इनसे अकबर के दो लड़के डाह करने लगे, क्योंकि अकबर का एक लड़का दानियाल रहीम का दामाद था। दूसरे लड़के स्वभावः जनते थे। रहीम का दामाद खड़ी जवानी में अति मद्यपान के कारण मृत्यु को प्राप्त हुआ। जब रहीम 50 वर्ष के थे तो जहाँगीर गद्दी पर बैठे। पहले जहाँगीर ने उन्हें बड़ा आदर दिया पर, फिर जहाँगीर के लड़के परवेज़ और मुराद रहीम से ईर्ष्या करने लगे और रहीम कभी विद्रोह शान्त करने के लिए भेजे जाते कभी बुला लिये जाते। फिर रहीम शाहजहाँ के साथ जब मिले तो नूरजहाँ उनसे नाराज हुई, क्योंकि वह अपने दामाद शहरयार को गद्दी देना चाहती थी। और रहीम के दुर्दिन शुरू हुए। पत्नी और दामाद तो पहले ही जा चुके थे, दो-दो लड़के सामने गये, बाप-बेटे की लड़ाई में खानखानाँ ऐसे फँसे कि पुत्र-पौत्र मरवा डाले गये, खुद कैद में डाल दिये गये। अन्त में मरने के एक साल पहले जहाँगीर ने इन्हें कैद से छुटकारा दिया और फिर से सम्मान दिया। यही नहीं उन्हें उस महावत ख़ाँ के विद्रोह को शान्त करने के लिए आदेश दिया जिसने जहाँगीर के आदेश से खानखानाँ को कैद किया था। महावत ख़ाँ को परास्त करके जब वे दिल्ली आये तो शरीर और मन से काफी जर्जर हो चुके थे बहत्तर वर्ष की अवस्था में इनकी मृत्यु हुई। रहीम को रणथम्भौर, जौनपुर और कालपी में जागीरें मिली थीं। इससे वे अवधी भाषा के सम्पर्क में आये, और आगरे में तो राजधानीथी ही, वे ब्रज के रंग में रंगे पर उनके ऊपर तुलसी का रंग गहरा है वैसे उन्होंने तीनों रंग की कविताएँ लिखीं। बरवे उन्होंने अवधी में लिखे। दोहे, सोरठे तथा कवित्त-सवैये ब्रज में और खड़ी बोली में 'मदनाष्टक' लिखा। संस्कृत में भी उन्होंने कुछ रचनाएँ कीं। उनकी एक रचना ज्योतिष का छोटा-सा ग्रन्थ 'खेटक कौतुकम्' है जिसमें संस्कृत, फ़ारसी, हिन्दी-तीनों का मिश्रण है। रहीम ने एक संस्कृत श्लोक में अपनी पीड़ाएँ व्यक्त की हैं : मैंने कौन-कौन भूमिकाएँ नहीं कीं, मैंने कौन-कौन स्वाँग नहीं किये, श्रीकृष्ण अगर मेरे इस स्वाँग और अभिनय से तुम्हारा कुछ मनोरंन हुआ हो तो उससे मुक्ति दो। अगर तुम्हें मेरा कोई स्वाँग अच्छा नहीं लगा तो ऐसा आदेश दो कि मैं फिर कोई स्वाँग न करूँ, मेरे स्वाँग करने पर ही तुम रोक लगा दो, मैं सहज हो जाऊँ।

आनीता नटवन्मया तवपुरः

श्रीकृष्ण या भूमिका

व्योमाकाश

खखाम्बराब्धवसवस्त्वस्त्रीतयेद्यावधि।

प्रीतस्त्वं यदि चेन्नरीक्ष्य भगवन् तत्प्रार्थितं देहि मे

नो चेद् ब्रूहि कदापि मानय पुनस्त्वेतादृशी भूमिकाम्॥

रहीम ने फ़ारसी में भी एक दीवान लिखा। बाबर के बाबरनामे की तुर्की से फ़ारसी

में अनुवाद की चर्चा की जा चुकी है। परन्तु रहीम का यश सबसे अधिक उनकी सहज कविता के कारण है। सहज काव्य-भाषा की समृद्धि तुलसी के बाद अगर किसी में है तो रहीम में है। तुलसी को सहजता मिली एक लम्बी साधना से और एक बहुत बड़े संकल्प से, अन्यथा केवल एक पुश्त के हिन्दुस्तानी रहीम को राजकाज में रहते हुए, मारकाट करते हुए और एक कठिन प्रपंच की जिन्दगी बिताते हुए इतनी सहजता मिलना असम्भव था। जब मैं रहीम की तस्वीर देखता हूँ—खूबसूरत चेहरा, बाँकी पाग, बायें हाथ में रत्नजटित तलवार, दायें हाथ ऐसे खुला हुआ जैसे किसी से हाथ मिलाना चाहता हो या सम्पत्ति लुटाना चाहता हो, शरीर तना हुआ पर आँखें मुस्कराती हुई और जब मैं जहाँगीर के मित्र ओरछा के वीरसिंह देव के आश्रित कवि केशवदास का यह शब्दचित्र पढ़ता हूँ :

अमित उदार अति पाव विचारि चारु
जहाँ-तहाँ आदरियो गंगा जी के नीर सों।
खलन के घालिबे को, खलक के पालिबे को
खानखानाँ एक रामचन्द्र जी के तीर सों।।

तो गंगा के जल की तरह पवित्र और रामचन्द्र जी के तीर की तरह से शत्रुवेधक, परन्तु जगत्पालक व्यक्तित्व को उनकी कृति में तलाश करने की ललक जाग उठती है। रहीम ने प्रेमपंथ का एक चित्र खींचा है :

रहिमन मैंन तुरंग चढ़ि चलिबो पावक माँहि।
प्रेमपंथ ऐसा कठिन सबसों निबहत नाँहि।।

घोड़े पर सवार होकर के आग के भीतर चलना ऐसी कठिन राह सबसे नहीं निभती। यह राह एक जलन है, दूसरी ओर बड़ी फिसलन एक ओर जिस पर चींटी के भी पैर फिसल जाते हैं और संसार में लोग हैं कि उस पर स्वार्थ रूपी बोझ से लदा हुआ बैल ले जाना चाहते हैं। वे यह नहीं जानते कि प्रेम कोई लेन-देन का सौदा नहीं है। रहीम जिन्दगी भर घोड़े पर सवार हो आग में दौड़ते रहे।

रहीम के काव्य-तुरंग की भी यात्रा अग्नियात्रा ही तो है। वह अग्नि है जीवन के सहज प्यार की, कभी बड़ी सुखद, कभी बड़ी दुःसह। पहले पड़ाव तक वे चढ़ती जवानी के उन्मादी अनुभवों से गुजरते हैं, पर वे अनुभव भी राजसी जीवन के अनुभव नहीं हैं, विभिन्न प्रकार के सामान्य जन की मानसिक स्थितियों में प्यार के अनुभव हैं। इनमें हास-विलास है, सजने-सजाने का भाव है, लालसा है, विदग्धता है, छल है, मान-मनी-अल है, प्रतीक्षा है, रागरंग है, ईर्ष्या है, उत्कण्ठा है और लगन है। कुल ले-देकर लौकिक शृंगार की लहकदार छटा है।

इस काल की दो रचनाएँ हैं—बरवै नायिका भेद और नगरशोभा। बरवै नायिका भेद में नायिका की विभिन्न अवस्थाओं के चित्र हैं। एक चित्र है :

मितवा चलेउ बिदेसवा, मन अनुरागि।

पिय की सुरत गगरिया, रहि मग लागि।।

इस चित्र में प्रिय की स्मृति का कलश लिये नायिका रास्ते में खड़ी रहती है, अब प्रिय लौटेंगे और स्मृतियों से भरा हुआ कलश उसका मंगल-शकुन बनेगा। एक दूसरा चित्र है :

भोरहि बोलि कोइलिया, बढ़वति ताप।

घरी एक धरि अलिया, रहु चुपचाप।।

अभी नींद रात भर स्मृतियों में खोये-खोये उचटी रही। जरा-सी आँख लगी कि कोयल सबेरे ही बोल पड़ी और सबेरे ही सबेरे ताप चढ़ गया। एक घड़ी तक तो चुप रहती। इसी काल की दूसरी रचना है, **नगर-शोभा** जिसमें विभिन्न व्यवसायों, वर्गों, जातियों-उपजातियों की रूपसी तरुणियों के चित्र हैं। कुंजड़िन का एक चित्र है :

भाटा बरन सु कौजरी, बेचै सोवा साग।

निलजु भई खेलत सदा, गारी दै दै फाग।।

बैंगन की तरह काली कुंजड़िन सोवा साग बेचती है और निलज होकर फाग खेलती है और इस ग्रंथ में आदि रस की परम द्युति को घट-घट में देखने की कोशिश है। कोई व्यवसाय छूटा नहीं है और आश्चर्य होता है कि कितने व्यवसाय थे। डफाली, गाड़ीवान, महावत, नालबन्दिनी, चिरवादारिन (सईस की स्त्री), कमागरी, नगारची, दबगरी (ढाल बनाने वाली), बाजदारिनी (बाज़ की सेवा में नियुक्त), सबनी-गरी (साबुन बनाने वाली), कुन्दीगरिन (सोने का पत्तर पीटने वाली), यहाँ तक कि जिलेदारिनी भी उसमें सम्मिलित हैं और उसका रंग कुछ और ही है :

औरन को घर सघन मन चलें जु घूँघट माँह।

वाके रंग सुरंग कौ जिलेदार पर छाँह।।

जिलेदार बेचार उसके वश में रहता है।

उसके बाद उनका दूसरा पड़ाव आता है, जिसमें जीवन के तरह-तरह के खट्ट-मीठे-तीते अनुभव एवं दिनों के फेर के वर्णन हैं, कुचालियों के वर्णन हैं, सज्जनों की सहज सज्जनता के चित्र हैं, कुसंग और सत्संग के प्रभाव का वर्णन है, और मान-मर्यादा का ऐसा स्वरूप चित्रित है, जो हर अवस्था के हर आदमी के लिए कठिन होते हुए भी वांछनीय लगता है। इस प्रकार के चित्र दोहों या सोरठों में हैं और इन्हें लोग प्रायः नीति का दोहा कहकर एक किनारे रख देते हैं। प्राचीन भारतीय साहित्य से ही सूक्ति की एक परम्परा चली आ रही है। वह सूक्ति जीवन के निरीक्षण और गहरी अनुभूति से जब उभरती है तो सटीक होती है और तब वह जनजीवन की स्मृति का ही नहीं बल्कि उसकी

मति का भी और उसकी प्रज्ञा का भी अंग बन जाती है। इन सूक्तियों को आदमी केवल याद ही नहीं रखता, उनको जीता भी है और उनसे प्रेरित होकर अपने कर्तव्य का निर्धारण भी करता है। रहीम की सूक्तियों की विशेषता यह है कि उनके सारे दृष्टान्त या तो पुराणों के लिये गये हैं या फिर सामान्य जीवन से। दृष्टान्तों के चयन में रहीम की मौलिकता और उनकी निरीक्षण-शक्ति का पता चलता है। पुराने जमाने की घड़ी का एक चित्र है जिसमें एक संपुटी में (शीशे के दो समान जुटे हुए गोलों में) जल भरकर के बारीक छेद से निकाला जाता था और तब घड़ियाल बजाया जाता था। इसी को लक्ष्य करके रहीम ने एक दोहा लिखा है :

रहिमन नीच प्रसंग ते, नित प्रति लाभ विकार।

नीर चोरावै संपुटी, मारु सहै घरियार।।

पानी तो चुराती है संपुटी और मार सहता है घड़ियाल। नीच के पास रहने पर यही होता है। पौराणिक दृष्टान्त का एक सटीक उदाहरण है :

रहिमन याचकता गहे, बड़े छोटे है जात।

नारायण हू को भयो, बावन आंगुर गात।।

माँगनेवाला कितना छोटा हो जाता है, विराट् नारायण भी माँगते समय वामन हो जाते हैं। सबसे अधिक अचरज की बात तो वहाँ है, जहाँ रहीम ने जीवन को एक बड़ी व्यापक दृष्टि से देखा है और जिन्दगी की हकीकत कई परिपार्श्वों से पहचानी है। एक दोहे में उन्होंने कहा है कि शत्रु-मित्र की पहचान तीन तरह से होती है :

रहिमन तीन प्रकार ते, हित अनहित पहिचानि।

पर बस परे, परोस बस, परे मामिला जानि।।

आप परवश हो जाएँ, आप पड़ोस में बसें या आप किसी मामले में फँस जाएँ, तब शत्रु-मित्र की सही पहचान अपने आप हो जाती है। यह जितना सच रहीम के समय में था उतना ही सच आज भी है। रहीम को ओछे और बड़े की बड़ी सूक्ष्म पहचान है। अगर छोटा है तो जब रीत जाता है तो सामने दिखाई पड़ता है और वह जब भर जाता है तो पीठ कर लेता है जैसे रहट की धरिया जब तक खाली रहती है तब तक सामने रहती है और जब भर जाती है तो पीछे उलट जाती है। और जो बड़ा होता है, वह मेंहदी की तरह से होता है। उसे कोई पीसता भी है तो उसके बड़प्पन का रंग उस पर चढ़ जाता है—‘बौटन वारे को लगे ज्यौ-ज्यौ मेंहदी को रंग।’ पर रहीम की दृष्टि में बड़प्पन पद से नहीं सम्बद्ध है, उन्होंने तो राजा को ऋणी, मंगन और कामातुर स्त्री के साथ जोड़ दिया है कि ये चारों न अर्जुन सुनते हैं, न किसी की गर्ज सुनते हैं। ये केवल अपना ही सुनते हैं। रहीम बड़प्पन की पहचान इसमें मानते हैं कि वह कितना सह सकता है। उसको कोई छोटा भी कहे तो

वह कभी घटता नहीं है, गिरिधर को कोई मुरलीधर भी कहे तो वे उससे नाराज नहीं होते :

जो बड़ेन को लघु कहें, नहिं रहीम घटि जाहिं ।

गिरिधर मुरलीधर कहे, कछु दुख मानत नाहिं ।।

परन्तु रहीम की इनसे भी मार्मिक सूक्तियाँ मान और मर्यादा को लेकर कही गयी हैं या फिर दोनों के हेर-फेर को लेकर कही गयी हैं। पानी पर रहीम की उक्ति प्रसिद्ध ही है :

रहिमन पानी राखिये, बिन पानी सब सून ।

पानी गए न ऊबरैं, मोती, मानसु, चून ।।

दिनों के फेर के ऊपर सबसे तीखी उक्ति है :

रहिमन एक दिन वे रहे, बीच न सोहत हार ।

बायु जु ऐसी बह गयी, बीचन परे पहार ।।

कभी ऐसा था कि हार का भी व्यवधान असह्य था और कुछ ऐसी हवा चली कि वे हार छाती पर पहाड़ हो गये हैं और ऐसी स्थिति में चुपचाप सहना ही एकमात्र विकल्प रह गया है :

रहिमन चुप है बैठिए देखि दिनन के फेर ।

जब नीके दिन आइहैं बनत न लगिहैं बेर ।।

और इस विकल्प से भी काम नहीं चलता। इच्छाओं की ही होली जलानी होती है।

चाह गई चिंता मिटी, मनुआ बेपरवाह ।

जिनको कछु ना चाहिए, वे साहन के साह ।।

ऐसे भिन्न-भिन्न प्रकार के अनुभवों से गुजरते हुए भी रहीम हर एक पड़ाव पर कभी भी प्यार की सरसता नहीं खोते। वे जानते हैं कि प्रेम से नर क्या नारायण भी वश में हो जाते हैं और इस जनम की सार्थकता यही है कि,

रीति प्रीति सबसों भली, बैर न हित मित गोत ।

रहिमन याही जनम की, बहुरि न संगत होत ।।

तीसरे पड़ाव तक पहुँचते-पहुँचते प्रेम का अनुभव गहराता जाता है। वे पहचानने लगते हैं कि प्रेम एक ऐसा जुआ है कि जिसमें केवल प्राणों की बाज़ी लगती है और हार-जीत की कोई चिन्ता नहीं रहती, यह लेन-देन नहीं है, अपनी ओर से पूरा समर्पण है :

यह न रहीम सराहिये लेन-देन की प्रीत।
प्रानन बाजी राखिये, हारि होय के जीत।।

पर रहीम प्रेम की पीर ही नहीं प्रेम का सुहाना रंग भी पहचानते हैं। यह एक नया रंग है जो प्रेमी और प्रेमिका दोनों के अलग-अलग रंग नहीं रहने देता, एक नया रंग बना देता है और जैसे हल्दी और चूना मिलते हैं तो हल्दी अपना पीलापन छोड़ देती है और चूना अपनी सफेदी, दोनों मिलकर चटक लाल हो जाते हैं।

रहिमन प्रीति सराहिये मिले होत रंग दून।
ज्यों हरदी जरदी तजै तजै सफेदी चून।।

रहिमन प्रीति के रंग में लौकिकता और अलौकिकता दोनों की अलग-अलग छटा है। एक ओर रहीम यह पहचानते हैं कि ब्याह एक व्याधि है, ढोल बजा-बजा करके पाँव में बेड़ी पड़ती है, हो सके तो इससे बचो :

रहिमन ब्याह बियाधि है सकौ तौ जाहु बचाय।
पाँय में बेड़ी परत है ढोल बजाय बजाय।।

ओर दूसरी ओर यह भी पहचानते हैं कि एक बार प्रेम का जुड़ाव हो जाय तो उसे तोड़ना नहीं चाहिए। जब प्रेम टूट जाता है तो फिर मिलता नहीं और मिलता है तो गाँठ पर ही जाती है।

रहिमन धागा प्रेम का मत तोड़ो छिटकाय।
टूटे तो फिर ना मिले मिले गाँठ पड़ जाय।।

अन्त में रहीम नाते-निभाते यह अनुभव करने लगते हैं कि असली नाता तो जुड़ा नहीं। सब नाते-रिश्ते चूल्हे में झोंक कर पार उतरना चाहते हैं :

रहिमन उतरे पार भार झोंकि सब भार में

तब वे ऐसे प्रियतन की छवि आँखों में भरना चाहते हैं, जिसके भर जाने पर दूसरी छवि के लिये कोई गुंजाइश न रह जाय :

प्रीतम छवि नैननि बसी, पर छवि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि, पथिक आप फिरि जाय।।

जब सराय भरी रहेगी तो पथिक आयेंगे भी तो खुद लौट जायेंगे।

वे आँखों की पुतली को शालिग्राम बना लेना चाहते हैं, ऐसा शालिग्राम जो चाँदी के अरघे में रखा हुआ हो और नहलाया जा रहा हो प्यार के जल से :

रहिमन पुतरी स्याम, मनहुँ जलज मधुकर लसै ।
कैधों शालिग्राम, रूपे के अरधा धरे ।।

ऐसी पवित्र उत्प्रेक्षा शायद ही किसी दूसरे हिन्दी या किसी भी भारतीय भाषा के कवि के मन में उपजी होगी। कवियों ने आँखों में मीन, खंजन, अमृत, विष, शराब, कमल, तीर, कटार जाने क्या-क्या देखा, पर किसी ने आँखों की पुतरी में शालिग्राम नहीं देखा। रहीम के पास प्यार की पवित्रता की ऐसी पहचान थी।

रहीम ने इसीलिए तुलसी के निरपेक्ष रंग में चातक के प्रेम को सबसे ऊँचा माना, सबसे सच्चा माना :

आँखिन देखत सब ही, कहत सुधारि ।
पै जग साँची प्रीति न, चातक टारि ।।

और दूसरी प्रीति तो केवल आँखों का दिखावटी व्यवहार है, सच्ची प्रीति चातक की है, क्योंकि निरपेक्ष है। उन्होंने माना कि निरपेक्ष प्रीति ऐसी होती है जो अपने को पूरी तरह विलीन कर देती है अपने लिए कोई उपेक्षा नहीं रखती। जब कोई ऐसी प्रीति पाने जाता है तो प्रीति हो करके ही लौटता है, जैसे कोई कहीं आग लेने जाय और खुद ही आग बनकर लौटे, ऐसी आग जो कभी बुझे ही नहीं, भभक-भभक कर जलती रहे।

गई आगि उर लाइ, आग लेन आई जो तिय ।
लागी नाहिं बुझाइ, भभकि बरि बरि उठे ।।

सूखी उपली भी उपली नहीं रह जाती, आग बन जाती है। और घर का रास्ता भूल जाता है, यह भूल जाता है कि घर से आग लेने हम निकले थे, बस आग देने वाले के पीछे-पीछे चल देने को मन करता है :

बरि गइ हाथ उपरिया, रहि गइ आगि ।
घर कै बाट बिसरि गई, गुहनै लागि ।।

और इस स्थिति में पहुँचना ऐसा है जिसके बारे में कुछ भी कहा नहीं जाता। और जो कहते हैं, वे इस स्थिति को जानते नहीं और जो इसे जानते हैं, वे फिर कहते नहीं, 'मन मस्त हुआ तो क्यों बोले'।

रहिमन बात अगम्य की कहन सुनन की नाहि ।
जै जानत ते कहत नहि, कहत ते जानत नाहि ।।

इस विलक्षण अनुभव से जो गुजरता है वह देख सकता है कि बिन्दु में कैसे सिन्धु समा गया है और कैसे इस सिन्धु को खोजने वाला अपने आप हैरान हो रहा है, क्योंकि वह नहीं देखता कि सिन्धु

की सार्थकता इसी में है वह एक उछली हुई बिन्दु के आकर्षण में समा जाय, आकर्षण से खिंचकर उसी में अपना पूरा ज्वार, पूरी उमंग, पूरी इन्द्रधनुषी रंगत समाहित कर दे :

बिन्दु में सिन्धु समान, को अचरज कासो कहे ।

हेरनहार हेरान रहिमान अपने आप पै ।।

और यह संभव तब होता है जब चित्त से 'स्याम की बानि' न टरे :

अनुदिन श्री वृन्दावन ब्रज ते आवन जानि ।

अब 'रहीम' चित्त ते न टरति है सकल स्याम की बानि ।।

कहा जाता है कि रहीम वृन्दावन गये और गोविन्द देव के मन्दिर के सामने बैठ गये । उन्हें प्रवेश नहीं मिल रहा था । उन्होंने दो पद गाये और गोविन्द ने स्वयं आकर उन्हें दर्शन दिया, अपने हाथ से उन्हें प्रसाद दिया । उनमें से पहला पद इस प्रकार है :

कमल-दल नैननि की उनमानि ।

बिसरत नाहिं सखी मो मन ते मंद मंद मुसकानि ।।

यह दसननि दुति चपला हूँ ते महा चपल चमकानि ।

बसुधा की बसकरी मधुरता सुधा-पगी बतरानि ।।

चढ़ी रहे चित उर बिसाल की मुकुलमाल थहरानि ।

नृत्य समय पीतांबर हू की फहरि फहरि फहरानि ।

अनुदित श्री वृन्दावन ब्रज ते आवन आवन जानि ।

अब 'रहीम' चित्त ते न टरति है सकल स्याम की बानि ।।

यही है सिन्धु का बिन्दु में समाना । इस माने मे वे सूर के भी बटाईदार हैं । जब वे कहते हैं कि श्याम के चन्द्रमुख को आमने-सामने देखने के लिए साध लेकर मरना ही बदा रहता है । ओट करते हैं तो रहा नहीं जाता और मिलने में ही सनातन विरह की बाधा बनी रहती है । इस विरह की बाधा को शब्दों में कैसे उतारें :

कौन धौं सीख 'रहीम' इहाँ इन नैन अनोखि सनेह की नाँधनि ।

प्यारे सौं पुन्यन भंट भई यह लोक की लाज बड़ी अपराधनि ।।

स्याम सुधानिधि आनन को मरिये सखि सूधे चितैवे की साधनि ।

ओट किए रहतै न बनै कहतै न बनै बिरहानल बाधनि ।।

इस पड़ाव की रचनाएँ दोहों में हैं, सोरठों में हैं, बरवै में हैं । बरवै में श्रीकृष्ण के विरह में बारहों मास तड़पती गोपी के चित्र हैं, उपालम्भ के चित्र हैं । इसके अलावा कुछ थोड़े से कवित्त-सवैये और पद हैं । कुछ संस्कृत के श्लोक भी हैं जिनमें तीन तो श्रीकृष्ण को सम्बोधित हैं, एक राम को और एक गंगा को । श्रीकृष्ण सम्बोधित एक श्लोक में तो रहीम

अपने हृदय के गहन अन्धकार में माखन चोर श्रीकृष्ण को छिप जाने का आमन्त्रण देते हैं। बड़ी सुरक्षित जगह है, यहाँ कोई तुम्हें पकड़ नहीं पायेगा।

नवनीतसारमपहृत्य शंकया स्वीकृतं यदि पलायनं त्वया ।
मानसे मम घनान्धतामसे नन्दनन्दन कथे न लीयसे ।

दूसरा श्लोक पहले उद्धृत किया जा चुका है। तीसरे श्लोक में रहीम श्रीकृष्ण को कुछ देना चाहते हैं और देखते हैं कि उनके पास सब कुछ तो है। रत्नाकर ही उनका घर और लक्ष्मी ही उनकी गृहिणी है, उनको क्या दिया ही जा सकता है। बस उनका मन राधा ने ले लिया है चुरा लिया है। मैं अब उन्हें अपना मन दे दूँ। वे मनवाले हो जायँ और मैं उनकी सुधि में उन्मन हो जाऊँ :

रत्नाकरोऽस्ति सदनं गृहिणी च पद्मा
किं देयमस्ति भवते जगदीश्वराय ।
राधागृहीतमनसे मनसे च तुभ्यं ।
दत्तं मया निजमनस्तदिदं गृहाण ॥

गंगा को सम्बोधित श्लोक में एक गहरा और सूक्ष्म भाव है। जब मृत्यु हो तो गंगा तुम्हारे किनारे। मेरी मृत्यु हो तो मुझे विष्णु का सारूप्य न देना, शिव का सारूप्य देना ताकि तुम मेरी सिर आँखों बनी रहो :

अच्युतचरणतरंगिणि शशिशेखर-मौलि-मालतीमाले ।
मन तनु-वितरण-समये हरता देया न मे हरिता ॥

शायद ही किसी भक्त कवि ने गंगा से ऐसा वरदान माँगा और गंगा के लिए ऐसे भाव अर्पित किये हों। रहीम के चित्त का संस्कार संभव ही इसीलिए हुआ है कि उन्होंने आत्मीयता की राह खोजी है। वे अपनी विदग्धता को सहजता से जोड़ते हैं। फारसी के अन्दाज को गाँव के सलोनेपन के साथ, अपने पराक्रम को क्षमा के साथ और राजसी ठाठबाट को फकीरी के साथ जोड़ सकते हैं। वे मुसलमान जन्मे, मुसलमान दफनाये गये। धर्म नहीं बदला, कर्म नहीं बदला, पर उन्होंने अपनी पहचान एक बड़ी पहचान के साथ जोड़ी, जिसमें न किसी नदी का नाम रहता है, न किसी नाले का, केवल एक नाम रहता है—‘सुरसरि’ का जिसमें जन की पीर अपने पीर से प्रबल हो जाता है और जन की पीर टालनेवाले ‘श्री बलबीर’ एकमात्र आत्मीय बचे रहते हैं। और उनके बिना सुख की कोई संभावना नहीं रहती :

जदपि बसत हैं सजनी, लाखन लोग ।
हरि बिन कित यह चित्त को, सुख-संजोग ॥

ऐसे नेही चित्त वाले रहीम के काव्य में धुआँ कहाँ से प्रकट होगा। वहाँ तो केवल भीतर की एक रोशनी होगी, उसके पास आने पर सारी जमी हुई जड़ता पिघल जायेगी। यह अवश्य है कि उस निर्धूम आग को बार-बार अपने भीतर दहकाना होगा।

मुक्ता का हार यदि टूट जाता है तो फिर-फिर उसे पोहना चाहिए, मानव मूल्यों से लगाव छूट जाता है तो फिर-फिर जोड़ना चाहिए। रहीम इसी जुड़ाव के कवि हैं।

टूटे सुजन मनाइये, जो टूटे सौ बार।

रहिमन फिर-फिर पोहिये, टूटे मुक्ताहार।।

जोड़ने का यह संकल्प हर ज़माने में आवश्यक होगा और यह संकल्प लेनेवाला हर ज़माने में अपना बना रहेगा, खास करके उस ज़माने में जहाँ सब कुछ टूट रहा हो।

जीवन-वृत्त

अब्दुरहीम खानखानाँ मुगल सम्राट अकबर के मंत्री और सेनापति थे। यह ऐतिहासिक व्यक्तित्व तत्कालीन घटनाओं से सीधा जुड़ा रहा था। प्रमुख अमीर के रूप में इनके पिता बैरम खाँ, हुमायूँ और अकबर से जुड़े रहे थे। इसलिए इनका इतिवृत्त समकालीन इतिहास ग्रंथों—‘तुजूके बाबरी’, ‘हुमायूँनामा’, ‘अकबरनामा’, ‘तुजूके जहाँगीर’, ‘मआसिरुल-उमरा’, ‘तजकरे खवानीन’, ‘रोजे तुलसफा’, ‘हबीब उलसियर’, ‘तारीख-ए-फिरिश्ता’, ‘मआसिरे रहीमी’, तथा ‘तारीख-ए-बदाउनी’, में मिलता है।

पारिवारिक पृष्ठभूमि

अब्दुरहीम तुर्कमान जाति के कराकयल् (काली बकरी वाले) परिवार की बहारलू शाखा में उत्पन्न बैरम खाँ खानखानाँ के पुत्र थे। इनकी वंश-परम्परा इस प्रकार रही है—बहारलू, अलीशकर बेग, पीर अली, यार बेग, सैफ अली, बैरम खाँ, अब्दुरहीम। इस वंश का तुर्कमान की मुगल (मुगल खाँ पूर्वज के नाम पर) शाखा से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा था। तैमूर के वंश मुहम्मद मिरजा ने अलीशकर की पुत्री से विवाह किया था। उसी वंश का सैफअली बाबर का मुसाहिब था, जिसने अपने लड़के का नाम बैरम बेग रखा, जो आगे चलकर बैरम खाँ खानखानाँ कहलाया।

बैरम बेग की शिक्षा बलख में हुई। 16 वर्ष की अवस्था में हुमायूँ के पास आकर नौकरी की¹ और बढ़ते-बढ़ते मुसाहबी और अमीरी की स्थिति तक पहुँचा। सन् 1534 में हुमायूँ ने गुजरात के बादशाह सुलतान बहादुर को भगा कर चंपानेर का किला जीत लिया। उस समय बैरम बेग ने पूरी सहायता की। शेरशाह सूरी से चौसा और कन्नौज के युद्धों के समय भी साथ रहा और उसने बड़ी वीरता से युद्ध किया। शेरशाह से पराजित होने पर हुमायूँ पश्चिम की ओर चला गया।

बैरम बेग हुमायूँ का विश्वासपात्र था। दुर्दिनों में उसने हुमायूँ का पूरा साथ दिया। शेरशाह ने बैरम को अपने यहाँ रखना चाहा किन्तु वह सहमत नहीं हुआ। उस समय उसका कथन था—‘जो इखलास (भक्ति) रखता है, खता (धोखा) नहीं करता।’ वह कष्ट

1. इसके अनुसार बैरम खाँ का जन्म सन् 1503 में माना जा सकता है।

सहन करता हुआ, सिंध में हुमायूँ से आ मिला। कामरान, जोधपुर और सिंध के सरदारों से सहायता न पाकर हुमायूँ अमरकोट, सिंध, काबुल, फारस और ईरान भटकता रहा। इस भटकन के दौरान छोटे भाई हिंदाल के गुरु शेखअली अकबर जामी की पुत्री हमीदा बानो के सौंदर्य पर रीझ कर 1542 में उसने विवाह कर लिया। 23 नवम्बर, 1542 को अकबर का जन्म हुआ। बाद में उसने असकरी मिर्जा से कंधार और कामरान से काबु छीन लिया। हिंदाल के निधन पर गज़नी की जागीर शाहजादा अकबर को मिली। सन् 1544 में ईरान के बादशाह से बैरम बेग को 'खाँ या खानबादशाह की उपाधि मिली।

शेरशाह सूरी के पुत्र सलीमशाह सूरी की मृत्यु के पश्चात् सन् 1554 में हुमायूँ ने हिन्दुस्तान विजय के लिए प्रस्थान किया। उस समय मुनीम खाँ शाहजादा अकबर का अतालिक (संरक्षक) और बैरम खाँ सेनापति था (हुमायूँनामा, गुलबदन बेगम)। फरवरी, 1955 को उन्होंने लाहौर पर अधिकार कर लिया और 22 जून को सरहिंद में सिकन्दर सूरी को पराजित किया। जुलाई में दिल्ली पर अधिकार कर पुनः वह सिंहासन हथिया लिया, जिसे उसके पिता ने अपने बाहुबल से अर्जित किया था और अपनी दुर्बलता से खो दिया था। राजगद्दी पर बैठते ही हुमायूँ ने हिन्दुस्तान के जमींदारों से सम्बन्ध बनाने के लिए उनकी पुत्रियों से विवाह किया। हुसेन खाँ मेवाती का चचेरा भाई ज़माल खाँ हुमायूँ के पास आया। उसकी बड़ी पुत्री का विवाह हुमायूँ से और छोटी का बैरम खाँ से कर दिया गया। इसी मेव कन्या से 17 दिसम्बर, 1556 को लाहौर में अब्दुरहीम का जन्म हुआ। मुंशी देवी प्रसाद (खानखाना नामा) ने बड़े श्रम से इनकी जन्म-पत्री को खोज निकाला है—

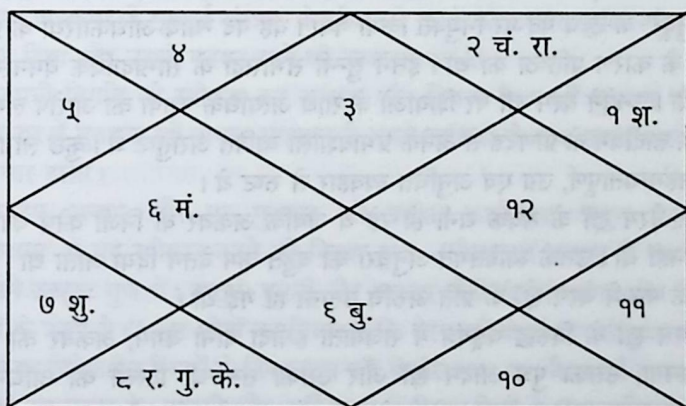
संवत् 1613 शा. 1578 मार्गशीर्ष शुक्ल, 14 चन्द्र घ, 5 पल, 37 परते पूर्णिमा कृत्तिका नक्षत्रे घ. 26/46 शियोगे घ. 24/20 इह दिवसे सूर्योदयात् गत घटी 28/16 रात्रिगत घ. 2/55 मिथुन लग्ने लाभपुरे श्रीमत् खानखाना महाशयानाम् जनिरभूत्।

अब्दुरहीम के जन्म के आस-पास ही बैरम खाँ को खानखाना की उपाधि मिली। नवम्बर, 55 में तेरह वर्षीय बालक अकबर को बैरम खाँ के संरक्षण में पंजाब का प्रांतपति नियुक्त किया गया।

27 जनवरी, 1556 को हुमायूँ का निधन हो जाने पर बैरम खाँ ने अकबर को लाहौर की राजगद्दी पर बैठाकर खुतवा पढ़वा दिया। राज्य-कार्य का समग्र भार बैरम खाँ खानखाना पर आ गया। अकबर और बैरम खाँ लाहौर से दिल्ली चल दिए। जालंधर में सब लोग ठहरे। यहीं बैरम खाँ का दूसरा विवाह बाबर की नवासी (पुत्री की पुत्री) सलीम सुलताना बेगम से हुआ। इस सम्बन्ध में हुमायूँ ने ही निश्चित किया था किन्तु अपनी उलझनों के कारण यह कार्य सम्पन्न नहीं करा सका था। बैरम खाँ के कार्यों और योग्यता के पुरस्कारस्वरूप शाही घराने से यह सम्बन्ध हुआ था, बैरम खाँ की मृत्यु के पश्चात् स्वयं अकबर ने उससे विवाह कर लिया।

जब अकबर गद्दी पर बैठा, तब उसका सदर मुकाम सरहिन्द था। उसके सामने

बड़ी कठिनाइयाँ थीं। सरहिन्द, दिल्ली और आगरा के अतिरिक्त उसके पास कुछ न था। दिल्ली, आगरा पर भी अफगानों की तलवार मँडरा रही थी। अकबर बुद्धिमान था, साथ ही उसे तुर्क सरदार बैरम खाँ का संरक्षण प्राप्त था। शत्रुओं की आपसी कलह और राज्यों की विविधता उसके पक्ष में थी, लेकिन हिन्दुस्तान की सल्तनत खड़ी करने की कठिनाइयों को उसके सरदार समझते थे। उन्होंने हिन्दुस्तान छोड़कर काबुल को अपना केन्द्र बनाने के लिए अकबर को सुझाव दिया, किन्तु बैरम खाँ अनुभवशील था। उसने अफगानों के साथ अनेक युद्ध करके उनकी कमजोरियों को पहचान लिया था। सरदारों के परामर्श को अस्वीकार करते हुए उसने सुझाया कि पंजाब छोड़ते ही पंजाब तो हाथ से निकल ही जायेगा, दिल्ली और आगरा से भी कोई सम्बन्ध नहीं रह जायेगा। हिन्दुस्तान पर अधिकार करने के बाद अपने घर काबुल में अफगान उन्हें एक दिन भी न टिकने देंगे। अकबर ने बैरम खाँ की बात समझी। वैसे भी अभिभावक के प्रभाव में था। इधर काबुल ने बगावत कर दी थी और वहाँ के तुर्क सरदारों ने अकबर के भाई हकीम के नाम पर काबुल का अधिकार दिल्ली से स्वतंत्र कर लिया। इस संकट के समय जब घर के बागी पीठ पर थे और प्रबल शत्रु सामने था, बैरम खाँ ने आश्चर्यजनक दृढ़ता और तेजी का परिचय दिया। दिल्ली से भागे तार्दी बेग और उसके सरदारों को कायर कहकर बन्दी बना लिया और पानीपत के मैदान में हेमू से मुकाबले की तैयारी कर दी।



बाबर के समान बैरम खाँ ने सेनानायकों के सम्मुख प्रेरक व्याख्यान दिया। हेमू की गतिविधियों को परखने के लिए एक छोटी सेना भेजी, जिसने हेमू के तोपखाने पर अधिकार कर शेष सेना को उससे काट दिया। पानीपत के घमासान युद्ध में हेमू की आँख में तीर लगने से राजपूतों और अफगानों के पैर उखड़ गये और वे भाग खड़े हुए। परिस्थिति की भयंकरता को समझकर और अकबर के हिचकिचाने पर आहत और निहत्थे हेमू को बैरम खाँ ने मार दिया। इस संदर्भ में स्मिथ (द ग्रेट मुगल अकबर में) का कथन विचारणीय है—“इसे चाटुकार दरबारियों ने गढ़ा था। गाज़ी बनने को प्रेरित करने पर अकबर ने हेमू

की गर्दन पर प्रहार किया था।”

बैरम खाँ के कुशल नेतृत्व में अकबर के साम्राज्य का विस्तार होता चला गया। उसने अंतिम प्रतिरोध सिकंदर सूरी को आत्मसमर्पण के लिए बाध्य करके अधीन कर लिया।

बैरम खाँ अकबर का विश्वस्त अभिभावक ही नहीं, प्रारंभ में असाधारण शुभचिंतक था। हुमायूँ उसको अतालीक कहकर प्रायः खान बाबा के नाम से पुकारता था। यही सम्मान अकबर ने भी किया था। लेकिन धीरे-धीरे साम्राज्य के विस्तार और अपनी बढ़ती शक्ति के अहंकार से बैरम खाँ मदान्ध हो चला था। उसकी कठोरता और धाँधली बढ़ती गयी। इतिहासकारों ने उसके पतन के निम्न कारण माने हैं :

1. सन् 1560 में अकबर 28 वर्ष का हो चुका था। उसे अपने पौरुष पर आत्मविश्वास जगने लगा था। ऐसी स्थिति में अभिभावक का नियंत्रण असहनीय प्रतीत हुआ। वह स्वयं सत्ता सँभालने के लिए व्यग्र हो उठा।

2. उसकी इस मनःस्थिति को अन्तःपुर की महिलाओं और बैरम खाँ से असंतुष्ट सभासदों ने उकसाया। बैरम खाँ के दबदबे को तोड़ने में अकबर की धाय और हरम की एकमात्र रक्षिका महाम अनगा ने सर्वाधिक योग दिया। उसने अकबर को समझाया कि बैरम खाँ के प्रभाव से मुक्त हुए बिना उसकी बादशाहत सुरक्षित नहीं रह सकेगी।

3. बैरम खाँ के निर्देश पर शिया सम्प्रदाय के शेख गदाई नामक व्यक्ति को ‘सद्र-ए-सुदूर’ के उच्च पद पर नियुक्त किया गया। यह पद न्याय-अधिकारियों के प्रधान का होने के कारण प्रतिष्ठा का था। इसने सुन्नी सभासदों के साम्प्रदायिक वैमनस्य को जन्म दिया। उन्होंने बैरम खाँ पर शियाओं के साथ अत्यधिक पक्षपा का आरोप लगाया।

4. तार्दीबेग के प्राणदंड से अनेक प्रभावशाली व्यक्ति असंतुष्ट थे। कुछ लोग बैरम खाँ के अहंमन्यतापूर्ण, उग्र एवं अनुचित व्यवहार से रुष्ट थे।

5. बैरम खाँ के सेवक धनी हो रहे थे जबकि अकबर के निजी कोष की कोई व्यवस्था नहीं थी। उसके व्यक्तिगत अनुचरों को बहुत कम वेतन दिया जाता था। इससे अकबर के मन में बैरम खाँ के प्रति अरुचि उत्पन्न हो गई थी।

बैरम खाँ के विरुद्ध षड्यंत्र में राजमाता हमीदा बानो बेगम, अकबर की धात्री माहम अनगा, उसका पुत्र आदम खाँ और उसका सम्बन्धी दिल्ली का अधिनायक शिहाबुद्दीन प्रमुख व्यक्ति थे। आखेट को गये अकबर को माता के अस्वस्थ होने का समाचार देकर बुलाया गया और दुर्ग के सुदृढ़ नाकेबंदी कर दी। बैरम खाँ के विरुद्ध जन सामान्य में बादशाह का विश्वास खोने का प्रवाद फैला दिया गया। दिल्ली के दरबार में अकबर ने घोषित कर दिया कि अब से बादशाहत की बागडोर उसके हाथों में है। इसके साथ ही बैरम खाँ को हज के लिए मक्का जाने की अंतिम चेतावनी देते हुए अपने शिक्षक अब्दुल लतीफ के द्वारा यह संदेश भेजा—“तुम्हारी ईमानदारी और निष्ठा पर पूर्णरूपेण आश्वस्त होने के कारण मैंने राज्य के समस्त महत्वपूर्ण कार्यों को तुम्हारे संरक्षण में छोड़ दिया था और मैंने केवल अपने आमोद का ही ध्यान रखा था। अब मैंने शासन की

बागडोर को अपने हाथ में धारण करने का निश्चय किया है और यह वांछनीय है कि अब तुम मक्का की तीर्थयात्रा करो, जिसके तुम इतने दीर्घकाल से इच्छुक थे। तुम्हारी आजीविका के लिए हिन्दुस्तान के परगनों में से तुम्हें उपयुक्त जागीर प्रदान की जायेगी, जिसका भूमिकर तुम्हें या तुम्हारे अभिक्ताओं को भेज दिया जायेगा।”

बैरम ख़ाँ के कुछ परामर्शदाताओं ने अकबर को बंदी बनाने और युद्ध से निर्णय करने का सुझाव दिया, किन्तु बैरम ख़ाँ ने कुछ असमंजस के साथ जीवन पर्यन्त की स्वामिभक्ति को कलंकित करने से अस्वीकार कर दिया। उसने अपने अधिकार-चिन्ह अकबर को लौटा दिए।

अप्रैल, 1560 में जब बैरम ख़ाँ बयाना चला गया, ससैन्य उसका पीछा करने और ‘उसके साम्राज्य छोड़ने की व्यवस्था करने के लिए’ अथवा जैसा कि बदाउनी (तारीख-ए-बदाउनी) को दूक बात कहता है, ‘उसे विलम्ब का अवकाश दिए बिना यथाशीघ्र मक्का के लिए बोरिया बिस्तर बँधवाने’ को पीर मुहम्मद चुना गया। किन्तु उसके भूतपूर्व नौकर को भारत से निकालने का जो कार्य सौंपा गया, उसके अपमान की चुभन इतनी तीखी थी कि क्षुब्ध होकर बैरम ख़ाँ ने विद्रोह कर दिया। अपने परिवार को तवरहिंद (संभवतया भटिंडा) छोड़कर पंजाब चला गया। जालंधर के निकट वह शाही सेना से पराजित हुआ। बाद में चित्रास नदी के निकट पकड़ कर, उसे अकबर के सामने प्रस्तुत किया गया। अकबर ने भूतपूर्व संरक्षक के शोक भरे शब्दों को उदारतापूर्वक स्वीकार कर मुक्त कर दिया और उसके मक्का जाने की व्यवस्था कर दी।

अपनी नियति को स्वीकार कर अभागा और विपन्न बैरम ख़ाँ गुजरात की ओर चला। पाटन में मुबारक ख़ाँ नामक अफ़ग़ान ने अपने साथियों के साथ हमला करके बैरम ख़ाँ को मार डाला।

माहम अनगा और पर मुहम्मद की प्रशंसा करनेवाला अबुल फज़ल भी ‘अकबरनामा’ में यह स्वीकार करने को विवश हुआ—“बैरम ख़ाँ वास्तव में सज्जन था और उसमें उत्कृष्ट गुण थे। वस्तुतः हुमायूँ और अकबर दोनों ही सिंहासन प्राप्ति के लिए बैरम ख़ाँ के ऋणी थे।” कुछ लोगों का विचार है कि बैरम ख़ाँ के संरक्षण से मुक्त होने के लिए अकबर विवेकहीन स्त्रियों के निकृष्टतम फंदे में फँस गया था। बैरम ख़ाँ काव्य-मर्मज्ञ और अच्छे रचनाकार थे। फ़ारसी और तुर्की भाषा में दीवान लिखे थे। ‘मआसिरुल-उमर’ में लिखा है कि उन्होंने अच्छे-अच्छे उस्तादों के शेरों में सुधार किए जिन्हें अच्छे-अच्छे भाषाविदों ने स्वीकार किया था।

अब्दुरहीम

बैरम ख़ाँ की मृत्यु के पश्चात् अमीन दीवाना, बाबा जम्बूर और ख्वाजा मलिक अनेक कठिनाइयों झेलते हुए चार वर्षीय अब्दुरहीम के साथ अहमदाबाद पहुँचे, जहाँ वे चार माह रहे (ख़ानख़ाना नामा) अकबर ने उसके पालन-पोषण का भार लेकर 11 अगस्त, 1561

को आगरा बुला लिया। अकबर के संरक्षकत्व में उसका पालन-पोषण हुआ। उसकी शिक्षा का असाधारण प्रबन्ध किया गया। उसने अरबी, फारसी, तुर्की संस्कृत और हिन्दी में दक्षता प्राप्त कर ली थी। जैसा कि अब्दुल बाकी (मआसिरे-रहीमी, भाग 2, पृष्ठ 562) ने लिखा है—“रहीम से मुझे ज्ञात हुआ कि 11 वर्ष की आयु में बिना गुरु की सहायता के उसने काव्य-रचना प्रारंभ कर दी थी।”

समझदार होने पर अकबर ने इन्हें ‘मिर्जा ख़ाँ (यह पदवी कभी मुगल बादशाहों को मिलती थी। बादशाह बनने से पूर्व बाबर मिर्जा ही था। हुमायूँ ने अकबर का नाम मिर्जा अकबर रखा था। बाद में यह उपाधि अमीरों को दी जाने लगी।) की उपाधि प्रदान की और अपनी धाय माहम अनगा की पुत्री महाबानू से इनका विवाह करा दिया। इस प्रकार बादशाह वंश से इनका वही सम्बन्ध हो गया जो इनके पिता बैरम ख़ाँ का था। आगे चलकर इसकी पुत्री का विवाह शाहजादे दानियाल और पौत्री का विवाह शाहजहाँ से हुआ।

प्रांताधिकारी से गुजरात में विप्लव की सूचना पाकर अकबर 23 अगस्त, 1573 को द्रुतगामी साँड़नियों पर सवार होकर गुजरात चल दिया। शत्रु सेना (बीस हजार) से सामना करने के लिए उसने अपनी अल्प सेना (तीन हजार) को तीन भागों में विभक्त किया—मध्य, दक्षिण और वाम। हरावल (मध्य) का सम्मानित सेनापतित्व सोलह वर्षीय किशोर अब्दुरहीम ख़ाँ को सौंपा गया। युद्ध-क्षेत्र में यशोपार्जन करने के लिए, निश्चय ही पुराने अनुभवी सेनानायकों के निर्देशन में, उसे पहला अवसर प्रदान किया गया। गुजरात अभियान के दौरान पाटन की जागीर इन्हें मिली। जिस भूमि पर पिता का वध हुआ, स्वयं के प्राणों पर आ बनी, वही उनके भाग्योदय का निमित्त बनी। दो वर्ष पश्चात् समग्र गुजरात पर इनका अधिकार हो गया। दो वर्ष ये मेवाड़ रहे। शहबाज ख़ाँ की सहायता से कुंभलनेर और उदयपुर पर अधिकार कर लिया।

बादशाह ने इन्हें कुलीन, समदर्शी, निःस्वार्थी और प्रजा का सच्चा सेवक जानकर सन् 1579 में ‘मीअरज़’ का पद प्रदान किया। बाद में इन्हें अजमेर की सूबेदारी और रणथंभौर का प्रसिद्ध किला भी मिला। अब्दुरहीम की कार्यक्षमता, योग्यता और बुद्धिमत्ता से अकबर इतना प्रभावित था कि किसी उच्च पद के खाली होने पर अकबर की दृष्टि इन्हीं पर जाती थी। शहजादे सलीम की ‘अतालिकी’ रिक्त हुई तो इन्हें दी गई। बाद में घोड़ों के क्रय-विक्रय के प्रबन्धक और शाहजादे के सहायक बने। इसी वर्ष इनका राजयोग प्रबल हुआ।

अकबर की प्रथम गुजरात विजय के दौरान बन्दी बनाया गया सुलतान मुजफ्फ़र किसी तरह भाग निकला। सेना एकत्र कर, गुजरात के अधिकांश भाग पर उसने अधिकार कर लिया था। उसे दवाने के लिए अब्दुरहीम को भेजा गया था। इन्होंने बिना सहायता की प्रतीक्षा किए, दस हजार सैनिकों से ही मुजफ्फ़र की एक लाख पैदल और चालीस हजार सवार सेना को पराजित कर अपने अद्भुत शौर्य, निर्भयता और सैन्य-दक्षता का परिचय

दिया। इससे इनका यश चतुर्दिक् फैल गया। अकबर ने प्रसन्न होकर जनवरी, 1584 को इन्हें खानखाना की उपाधि और पाँच हज़ारी मनसब दिया। इसके बाद कई बार इन्होंने मुजफ्फर को दंडित किया।

इस विजय की खुशी में खानखाना ने अपना सर्वस्व, यहाँ तक कि कलमदान तक संगी-साथियों में बाँट दिया था। मुगल शासन की सर्वोच्च उपाधि 'वकील' भी इन्हें टोडरमल के पश्चात् मिली। गुजरात की जागीर कोका को मिलने पर इन्हें जौनपुर की जागीर मिली। अपने पराक्रम से सिंध पर विजय प्राप्त कर मुलतान की जागीर पाई। इस बीच अवसर निकालकर खानखाना ने तुर्की भाषा में लिखे बाबर के आत्मचरित 'तुजुके बाबरी' का फ़ारसी में अनुवाद कर लिया। काबुल और काश्मीर से लौटते समय उसने यह अनुवाद अकबर को सुनाया। अकबर बेहद प्रसन्न हुआ। मुस्लिम इतिहासकारों का मत है, अब्दुरहीम की प्रसिद्धि इस अनुवाद के कारण भी हुई।

1593 में खानखाना को दक्षिण विजय का दायित्व सौंपा गया। इस कार्य के लिए शाहज़ादा मुराद को भी भेजा गया था। वह चाहता था यह अभियान गुजरात के रास्ते से हो, किन्तु खानखाना ने मालवा का मार्ग चुना। इससे मुराद रुष्ट हो गया। अन्ततः दोनों सेनानायक अहमदनगर से तीस कोस पर चौद नामक स्थान पर मिले। किन्तु यह भेंट मैत्रीपूर्ण न थी। इस अनबन का परिणाम यह हुआ कि अहमदनगर में शाही सेना को चौद बीबी का कड़ा प्रतिरोध सहना पड़ा और संधि के लिए विवश होना पड़ा।

दक्षिण के सैन्य अभियान की प्रगति असंतोषप्रद थी। शाहज़ादा मुराद और खानखाना का विग्रह पूर्ववत् था। वस्तुतः मुराद आवारा और अहंकारी था। सादिक ख़ाँ जैसे ईर्ष्यालु सलाहकार उसे भड़काते रहते थे। बदाउनी ने उसकी आलोचना करते हुए कहा है—“वह अपने को ‘पका अंगूर’ कहकर शेखी बघारता था, जबकि वह अभी अनपका अंगूर भी नहीं था” (तारीख-ए-बदाउनी)।

खानखाना ने अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुंडा की सम्मिलित सेना को पराजित किया। विजय की खुशी में लूटा हुआ धन सैनिकों में बाँट दिया। सादिक ख़ाँ के भड़काने पर मुराद ने इनके विरुद्ध बादशाह के पास शिकायतें भेजीं। अकबर ने इन्हें बुलाकर शेख अबुल फज़ल को दक्षिण का सेनापति बनाकर भेजा। सन् 1598 में खानखाना के नवयुवक पुत्र हैदरअली का देहान्त हो गया। वह अति मद्यपान का शिकार हुआ। इसी वर्ष बादशाह लाहौर से आगरा जा रहे थे तभी खान आजम और मिर्जा अजीज की बहिन और खानखाना की बेगम महाबानो सख्त बीमार हो गई और अम्बाला में उसकी मृत्यु हो गई। अकबर को इसका बड़ा दुःख हुआ, क्योंकि वह दूध-शरीक बहिन थी।

मई 1599 को शाहज़ादा मुराद की मिर्गी के कारण मृत्यु हो गई। उसके स्थान पर अकबर ने शाहज़ादा दानियाल और अबुल फज़ल के स्थान पर अब्दुरहीम को भेजा। खानखाना की जाना बेगम नामक कन्या का शाहज़ादा दानियाल से विवाह कर दिया गया था। फिरिश्ता (तारीख-ए-फिरिश्ता) के अनुसार अगस्त, 1600 में बिना कड़े प्रतिरोध

के अहमदनगर पर अधिकार कर लिया गया। आज़ाद (अकबरी दरबार) ने खानखानाँ और अबुल फज़ल जैसे घनिष्ठ मित्रों की प्रतिद्वन्द्विता का संकेत किया है। अकबर ने शेख को बुला लिया। शाहज़ादा सलीम के आदेश पर ओरछा के बुंदेला राजा वीरसिंह देव ने आगरा जाते हुए अबुल फज़ल का वध कर डाला। उसकी मृत्यु के पश्चात् दक्षिण का सारा भार खानखानाँ पर आ गया। उसने दानियाल का विवाह आदिल खाँ की बेटी से भी कराया।

खानखानाँ ने बुद्धि और चातुर्य से दक्षिण का अधिकांश भाग जीत लिया। बुरहानपुर, अहमदनगर और बरार को मिलाकर खान देश बनाया गया जिसका सूबेदार दानियाल और वज़ीर खानखानाँ नियुक्त हुआ। दानियाल असंयत और असाध्य मद्यप था। अकबर और खानखानाँ ने उसे सुधारने और नियंत्रित करने का यत्न किया, किन्तु मद्यपान से रोकने के लिए जो व्यक्ति नियुक्त किये गये, वे भ्रष्ट थे। गुप्त रूप से इस विषय को दानियाल तक पहुँचाते थे। अप्रैल, 1604 में, बुरहानपुर में उसकी मृत्यु हो गई। अकबर, खानखानाँ और जाना बेगम को इससे बड़ा आघात लगा और उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। जाना बेगम ने सती होना चाहा, किन्तु खानखानाँ ने बड़ी कठिनाई से रोका। उसके शेष दिन संताप में व्यतीत हुए। दानियाल की मृत्यु के पश्चात् दक्षिण का पूरा अधिकार खानखानाँ को मिल गया। यहाँ तक खानखानाँ ने वैभव, समृद्धि और अधिकार सम्पन्न जीवन को जिया और भोगा। अकबर के शासन काल में इन्हें भरपूर सम्मान और पद मिले।

27 अक्टूबर 1605 को अकबर की मृत्यु के पश्चात् शाहज़ादा सलीम जहाँगीर के नाम से सिंहासन पर बैठा। इस समय खानखानाँ की आयु 41 वर्ष की थी। जहाँगीर ने उन्हें अपने पद पर रहने दिया। जहाँगीर ने (तजुके जहाँगीरी, भाग 1, पृ. 147) दरबार में खानखानाँ को मेरी अतालिकी के अधिकार से सम्मानित था, बुरहानपुर से आकर सेवा में उपस्थित हुआ। वह इतना आनन्दित और उत्साहपूर्ण था कि यह नहीं जानता था कि वह पाँव से आया है या सिर से। उसने व्याकुलता से अपने को मेरे पैरों में डाल दिया और मैंने दयालुता से उसको उठाकर छाती से लगाया और उसका मुख चूमा। उसने मोतियों के दो हार, कई हीरे और माणिक भेंट किये, जिनका मूल्य तीन लाख रुपये था। इनके अतिरिक्त बहुत-सी अन्य वस्तुएँ और सौगातें भेंट कीं। बादशाह ने भी खानखानाँ को एक अद्वितीय घोड़ा, लड़ने में अद्वितीय 'फ़तह' नामक हाथी, बीस और हाथियों सहित भेंट किया। कुछ दिनों के पश्चात् खिलअत, कमर में लगाने की जड़ाऊ तलवार और खासे का हाथी भी प्रदान किया गया। जहाँगीर से समग्र दक्षिण जीतने का वादा करके खानखानाँ पुनः दक्षिण लौट गये। खाफी खाँ (आज़ाद, अकबरी दरबार) ने लिखा है—“खानखानाँ पहले दीवान थे। अब उन्हें 'वज़ीर-उल्लु मुल्क' की पदवी और पंच हजारी मनसब मिला था।

खानखानाँ बुढ़ाने लगे थे। मुराद की तरह शाहज़ादा परवेज से इनकी नहीं पटी।

इसके अतिरिक्त सहायकों की दगाबाजी और अपनी नासमझी से पराजित हुए। जो खानखाना अपराजेय रहा, वह तिरसठ वर्ष की आयु में बालाघाट में पराजित हुआ। अहमदनगर हाथ से निकल गया तो मुराद की तरह परवेज ने पिता को लिखा, या तो मुझे बुला लें या खानखाना को। खानजहाँ लोदी, जिसके कहने पर खानखाना बुलाया गया, दक्षिण में हार गया। तब पुनः खानखाना को दक्षिण भेजा गया। इस अवसर पर उनका मनसब छह हजारी का हो गया। जड़ाऊ तलवार, हाथी एवं हराकी घोड़ा भी भेंट में मिला। पुत्र ऐरच को 'शाहनवाज़ ख़ाँ' की उपाधि, तीन हजारी जात और सवार का मनसब, जड़ाऊ पेटी, खिलअत और घोड़े, दूसरे पुत्र दाराब को गाज़ीपुर की जागीर सहित पाँच सौ जाती या व्यक्तिगत मनसब प्रदान किया। जहाँगीर ने छोटे बेटे रहमान दाद को भी मनसब से वंचित नहीं रखा।

अब पिता व्यवस्था करता था, पुत्र राज्यों को जीतते थे। शाहनवाज़ ने अम्बर को पराजित किया। कुछ समय उपरान्त शाहज़ादा खुर्रम (शाहजहाँ) 'शाह' की उपाधि प्राप्त कर, परवेज के स्थान पर बुरहानपुर आया। उसकी सुव्यवस्था से दक्षिण का प्रबन्ध संतोषजनक हो गया। खानखाना के पुत्रों ने दक्षिण में वीरता दिखाकर वंश की कीर्ति को पुनः अर्जित किया। खानखाना के पुत्र अमरउल्ला ने सेना लेकर गोंडवाने की हीरे की खान पर अधिकार कर लिया। उन्हीं दिनों बादशाह ने खानखाना की पोती से शाहजहाँ का विवाह कर दिया। दक्षिण से लौटने पर बादशाह ने खुर्रम पर मोती-जवाहर न्यौछावर किये तथा तीस हजारी का मनसब और दरबार में कुर्सी पर बैठने का मनसब कर दिया।

सन् 1618 में बादशाह ने सात हजारी जात, सात हजार सवार का मनसब, खासा खिलअत, खासा हाथी, कमरपट्ट सहित जड़ाऊ तलवार, खानदेश तथा दक्षिण की सूबेदारी प्रदान की। अमीरों में यह मनसब अभी तक किसी को प्राप्त नहीं हुआ था।

खानखाना अपने यश और प्रताप की चरम सीमा पर पहुँच चुके थे, किन्तु वृद्धावस्था में एक के बाद एक आपदाएँ आती गई, जो बूढ़े सिपहसालार को तोड़ती चली गई। सन् 1618 में युवा पुत्र मिर्जा ऐरच, जिसकी योग्यता और शौर्य को देखकर अकबर ने 'बहादुर' और जहाँगीर ने 'शाहनवाज़ ख़ाँ' की उपाधि दी थीं और जिसे खानखाना का प्रतिरूप माना जाता था; अति मद्यपान से मर गया। दूसरे ही वर्ष छोटा पुत्र रहमानदाद अति सेवा-भावी और उत्साही होने से ज्वर की स्थिति में ही शत्रु सेना से लड़ने चला गया। जीतकर लौटते समय हवा खाकर मर गया। जहाँगीर ने 'तुजुके जहाँगीरी' में लिखा है—“जवान खूब लायक था। तमाम जगह उसका यही मनोरथ रहता था कि अपनी तलवार का चमत्कार दिखाये। जबकि मुझे ही कष्ट हुआ तो उसके बूढ़े बाप के दिल पर तो क्या गुज़रा होगा। अभी शाहनवाज़ ख़ाँ का जख्म ही न भरा था कि यह दूसरा घाव लगा।”

इन दुःखों से अब्दुरहीम इतने टूट चुके थे कि उदासीनता के कारण दक्षिण के प्रबन्ध में ढिलाई आ गई। उसका लाभ शत्रुओं को मिला। उन्होंने बहुत-सा भाग दबा

लिया। रसद-पूर्ति बन्द करके बुरहानपुर में शाही लश्कर को घेर लिया। इधर खानखानों सहायता के लिए निरन्तर लिख रहे थे, किन्तु उस समय बादशाह काश्मीर में थे और शाहजहाँ कोट कांगड़े में उलझा हुआ था। खीज कर यहाँ तक लिख डाला कि मैं घोर संकट में हूँ और मैंने जौहर करके मर जाने का निश्चय किया है। जहाँगीर की आज्ञा से शाहजहाँ ने आकर इन्हें संकट-मुक्त किया।

लेकिन दुर्भाग्य ने भविष्य में भी पीछा किया। नूरजहाँ के निरंकुश शासिका बनने पर परिस्थितियाँ बदलीं। उसने छोटे शाहजादे शहरयार (जो उसका दामाद भी था) को प्रमुखता देना प्रारंभ कर दिया। विवश होकर खानखानों को शाहजहाँ का साथ देना पड़ा। सुशील, आज्ञाकारी और प्रतापी शाहजहाँ विद्रोही हो गया। इधर खानखानों के बहुत पुराने और विश्वसनीय सेवक मुहम्मद मासूम ने जहाँगीर के पास गुप्त रूप से यह समाचार पहुँचाया कि खानखानों अन्दर ही अन्दर दक्षिण के अमीरों के साथ मिला हुआ है। मलिक अम्बर ने खानखानों के नाम जो पत्र भेजे थे, वे लखनऊ वाले शेख अब्दुल सलाम के पास हैं। जहाँगीर की आज्ञा से शेख को बन्दी बनाया गया। बहुत अधिक मार खाई, किन्तु उसने रहस्य खोलकर न दिया। खानखानों और मारा दक्षिण से शाहजहाँ के साथ आये। उस समय (1623 में) जहाँगीर ने खानखानों के लिए अपमानजनक शब्द लिखे हैं—“जबकि खानखानों जैसा अमीर जो अतालिकी के ऊँचे पद पर पहुँचा हुआ था, 70 वर्ष की आयु में अपना मुँह नमकहरामी से काला कर ले तो क्या गिला है ? उसके बाप ने भी अन्तिम अवस्था में मेरे बाप के साथ ऐसा ही बर्ताव किया था। यह भी इस उम्र में बाप का अनुगामी होकर हमेशा के लिए कलंकित हुआ। भेड़िये का बच्चा आदमियों में ाड़ा होकर भी अंत में भेड़िया ही रहता है। (तुजुके जहाँगीरी, भाग 2, पृ. 250)।

बाप-बेटे की मदांधता, विवशताजन्य तनाव और कलह तथा सौतेली माँ की स्वार्थभरी महत्वाकांक्षा के पाटों के बीच खानखानों और उसके परिवार को पिसना पड़ा। दुनियादारी की शतरंजी चालों का कुशल खिलाड़ी, स्वयं मोहरा बन गया।

इसी समय महावत ख़ाँ के नाम लिखा गया खानखानों का पत्र शाहजहाँ की पकड़ में आ गया और पुत्र दाराब ख़ाँ सहित उन्हें बन्दी बना लिया गया। बाद में दोनों को बुलाकर तथा वचन लेकर छोड़ दिया। घटना-चक्र ऐसा घूमा कि महावत ख़ाँ की चाल पर इन्हे सुलतान परवेज़ का साथ देना पड़ा। इससे शाहजहाँ रुष्ट हो गया। हताश और कुंठित शाहजहाँ ने दाराब ख़ाँ के पुत्र और भतीजे को मार डाला। अब सभी लोग खानखानों की ओर से सचेत रहते थे। इन्हें नजरबन्द करके परवेज़ के खेमे के पास रखा गया। इस बीच बादशाह और शाहजहाँ की सेना में कई बार मुठभेड़ें हुईं। भयानक रक्तपात हुआ। पीछे हटते हुए उसने शपथ और वचन लेकर, बंगाल का शासन भार दाराब ख़ाँ को सौंप दिया था। शाहजहाँ के बिहार की ओर चले जाने पर वह अशक्त हो गया। बादशाह की सेना ने बंगाल पर अधिकार कर लिया। जहाँगीर की आज्ञा से दाराब ख़ाँ का सिर काटकर, महावत ख़ाँ ने अभागे पिता के पास भेज दिया—महावत ख़ाँ की आज्ञा से सैनिकों ने

खानखानों से कहा—“हुजूर ने तरबूज भेजा है।” अत्यंत दुखी पिता ने अश्रुपूरित नेत्रों से कहा—“ठीक है। शहीदी है।”

बादशाह की सेना ने उनका धन-माल कुर्क करना चाहा। इसी की रक्षा में स्वामिभक्त राजपूत फहीम मारा गया। खानखानों ने इस अद्वितीय वीर को पुत्रवत् पाला था। उसकी मृत्यु भी खानखानों के लिए आघात थी। सन् 1625 में जहाँगीर के बुलावे पर, नतमस्तक हो, दरबार में उपस्थित हुए। जहाँगीर ने आश्वस्त करके उच्च पद दिया। पुनः खानखानों की उपाधि, खिलअत और कन्नौज की जागीर प्रदान की। एक इतिहासकार ने लिखा है कि उस दुनियादार बूढ़े बेशर्म ने अपनी अँगूठी में इस भाव का शेर अंकित कराया कि जहाँगीर की मेहरबानी और खुदा की मदद से मुझको दुबारा जिंदगी और खानखानानी मिली है :

मरा लुत्फे जहाँगीरी जे ताई दाते रब्बानी।

दो बार: जिंदगी दाद: दो बार खानखानी।।

(मआसिरुल उमरा, भाग 2, पृ. 196)

अगले वर्ष इतिहास-चक्र ने दूसरी करवट ली। नूरजहाँ ने महावत ख़ाँ से बिगड़कर जागीर और सेना का हिसाब-किताब माँगा। महावत ख़ाँ ने बादशाह और बेगम को पृथक्-पृथक् कैद कर लिया। खानखानों को पहले दिल्ली भेजा, फिर बीच से ही लाहौर बुला लिया।

नूरजहाँ की बुद्धिमत्ता और युक्ति से महावत ख़ाँ अशक्त होकर भागा। खानखानों ने निवेदन किया कि इस नमकहराम को दंडित करने का कार्य मुझे सौंपा जाये। उसकी जागीर खानखानों के वेतन के नाम कर दी गयी। खानखानों को सात हजारी जात, सात हजार सवार का मनसब, खिलअत, तलवार, जड़ाऊ जूतन सहित घोड़ा और खासा हाथी देकर जहाँगीर ने फिर उनका सम्मान किया और अजमेर का सूबा भी जागीर में दिया। लेकिन 72 वर्ष का वह वृद्ध शोक के घनत्व से इतना अशक्त हो गया था कि लाहौर में अस्वस्थ हो गया और दिल्ली पहुँचने तक दुर्बलता बहुत बढ़ गई, सन् 1627 में वह इस लोक से प्रस्थान कर गया। खानखानों को हुमायूँ के मकबरे के पास गाड़ा। उस पर लेख था—“खान-सिपहसालार को।”

व्यक्तित्व

अब्दुरहीम खानखानों का पारिवारिक जीवन दुखद रहा। चार वर्ष की अल्प आयु में पिता से वंचित हुए। 1598 में पत्नी का निधन हुआ। यौवन-काल में पुत्री विधवा हुई। इनके जीवन को त्रासदीपूर्ण बनाकर सभी पुत्र असमय में काल-कवलित हुए। संतान-शोक, अधिकार और प्रतिष्ठा की हानि ने इन्हें जर्जर कर दिया था। विषम स्थितियों के फलस्वरूप इनके काव्य में शोक और करुण भावों की अभिव्यक्ति हुई थी।

अब्दुरहीम ने अपनी जिंदगी में बड़े उतार-चढ़ाव देखे थे। कभी नवाब, सूबेदार,

वकील और सेनापति, कभी कैद की यातना भोगता हुआ अपमानित दरिद्र व्यक्ति, कभी बार-बार सम्मानित होते हुए, कभी निजी विडम्बनाओं और परिवेशजन्य विसंगतियों से टूटते हुए; अब्दुरहीम का व्यक्तित्व संघर्षशील रहा है। उन्होंने पीड़ा को बड़े साहस और दृढ़ता से झेला था। खानखाना के ऐतिहासिक जीवन चरित्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे बुद्धिमान, प्रतिभासम्पन्न, कार्यकुशल, योग्य सेनानायक और असाधारण वीर थे। जहाँगीर ने उनकी प्रशंसा में लिखा है—“खानखाना दरबार के बड़े अमीरों में से थे। अकबर के राज्य में इन्होंने बड़े-बड़े कार्य किए, जिनमें तीन प्रमुख थे—गुजरात की विजय, सुहेल के युद्ध में शत्रुओं को केवल बीस हजार सवारों से पराजित करना, सिंध और ठट्ट पर विजय।”

(मआसिरुल-उमरा, भाग 2, पृ. 198)

वे गुणवान और बौद्धिक थे। दूसरे स्थल पर जहाँगीर ने लिखा है—“खानखाना योग्यता और गुणों में संसार में अनुपम था। अरबी, तुर्की, फारसी और हिन्दी भाषाएँ जानता था। अनेक प्रकार की विद्याओं के साथ ही भारतीय विद्याओं का अच्छा ज्ञान रखता था। फारसी और हिन्दी में बहुत अच्छी कविता करता था। पूज्य पिताजी की आज्ञा से ‘वाकेआत बाबरी’ का फारसी भाषा में अनुवाद किया था। कभी कोई शेर, कभी कोई रुबाई और कभी कोई गज़ल भी कहता था।” (तुजुके जहाँगीरी)। उदाहरण के लिए जहाँगीर ने एक गज़ल और रुबाई उद्धृत भी की है।

अकबर को अब्दुरहीम विशेष प्रिय, अंतरंग थे। अपने एक पत्र (फ़रमान) में अकबर ने खानखाना और बीरबल को लम्बी-चौड़ी उपमा देते हुए बीरबल की मृत्यु पर शोक व्यक्त किया है—“ईश्वर इच्छा विलक्षण है। हमने भी उसका कुछ उपाय न देख कर संतोष किया और तुम भी अब संताप न करो। उस मरनेवाली की जीवनावस्था में भी तुम हमारे परम मित्र और गुप्त भावों के ज्ञाता थे और तुमको हम ईश्वर के दिए हुए अलभ्य पदार्थों में से जानते थे। अब तो तुम स्वयं जान सकते हो कि तुम्हारा गनीमत होना कितने अंशों में बढ़ गया है। परमेश्वर तुमको हमारी छत्रछाया में बनाये रखे।...और जो तुमने अपने बेटों के बारे में लिखा कि जब दक्षिण जाऊँ या हुजूर में भेज दूँ, तो तुम्हारा संतान का सम्बन्ध इस घर में ऐसा नहीं है कि किसी काम पर न हों तो क्षण भर भी आँखों से दूर रहें।”

एक दूसरे पत्र में भी अकबर ने गहरी आत्मीयता व्यक्त की है। तूरान के बादशाह द्वारा भेजे गये कबूतरों की प्रशंसा करते हुए उनसे वियुक्त न होने की बात कही है। आगे लिखा है—“तुम्हारा एक नया पाहुना (खानखाना की बेगम बच्चे को जन्म देनेवाली थी) भी रास्ता चल रहा है, उसके पहुँचने तक ठहरो। हम तुमको अच्छे-अच्छे कबूतर प्रदान करेंगे और उस मेज़मान (नवागन्तुक) को भी इनके बच्चों में से हिस्सा मिलेगा। कदाचित् विलम्ब हुआ तो जो तुमने अपने वास्ते सोचा (कल्पना की होगी) होगा, उससे कम मिलेंगे।”

(मुनशियात अबुलफज़ल, सं. अब्दुल समद)

अबुलफज़ल अब्दुरहीम का विश्वस्त एवं हितैषी मित्र था। वे आपस में गहरा प्रेम

और आदर करते थे। उसके एक पत्र का अंश है—“तुम्हारे मिलने की लालसा उतनी प्रबल है जितनी जय प्राप्ति की प्रसन्नता है।” मैं क्या कहूँ इन दिनों चित्त को कैसी चिन्ता रही। इधर तो वियोग का दुःख, उधर गुजरात से बुरे समाचारों के पहुँचने का उद्वेग और इनसे कष्ट की यह बात कि बहुत दिनों से तुम्हारा न कोई दूत आता था और पत्र पहुँचा था। इन सबसे बढ़कर शत्रुओं की दुष्टता थी जो निंदा करके मित्रों का दुःख बढ़ाते थे।¹ परन्तु बादशाह के तेज प्रताप से अब यह दुर्दशा समाप्त हो गई और शीघ्र ही अच्छे दिन आ गये।

इंसाफ की बात यह है कि तुमने बड़ी वीरता दिखाई। सह (जीत) तुमसे ही संभव हो पाई और पुरुष-सिंह ऐसा ही किया करते हैं। तलवारों और कमानों में यदि बोलने की शक्ति हो तो वे तुम्हारे भुजबल को हज़ार बार बखान करें।...बहमन महीने की अंतिम मिति को बादशाह का कटक कोड़ा घाटमपुर (आगरा से 50-60 कोस दूर) उतरा ही था कि किसना चौधरी के कासिद (धावक) बधाई लेकर पहुँचे। इसके पीछे कल्याणराय, एतमाह खाँ, निजामुद्दीन अहमद और शहाबुद्दीन अहमद की अर्जियाँ क्रम से पहुँची, जिनसे तुम्हारी पूरी बहादुरी बादशाह को ज्ञात हुई। श्रीमान् ने प्रसन्न होकर परम कृपा से बहुत शाबाशी और खानखानों की वपौती पदवी तुमको दी।”

(मुनशियात अबुलफज़ल, सं. अब्दुल समद)

निजामुद्दीन बख्शी ने ‘तबकाते नासिरी’ में अपने समकालीन अमीरों का परिचय दिया है। अब्दुरहीम का परिचय देते हुए लिखा है—“इस समय खानखानों की आयु 37 वर्ष की है। दस वर्ष हुए, इसने खानखानों का मनसब और सेनापति का पद प्राप्त किया था। इसने बहुत बड़ी-बड़ी सेवाएँ की हैं और बड़े-बड़े युद्धों में विजयी हुआ है। इस सुयोग्य और मान्य पुरुष के ज्ञान, विद्या और गुणों के सम्बन्ध में जो कुछ लिखें, वह सब सौ में से एक और बहुत में से थोड़े हैं। इसने सब लोगों पर दया करने का गुण, बड़े-बड़े विद्वानों और पंडितों की शिक्षा, फकीरों का प्रेम और कवि-हृदय मानो अपने पिता से उत्तराधिकार में पाया है। लौकिक ज्ञान और गुण की दृष्टि से इस समय दरबार में इसके जोड़ का कोई अमीर नहीं है।”

रहीम के काव्य से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि लौकिक ज्ञान में खानखानों अद्वितीय थे। इसके लिए खुली दृष्टि और विविध अनुभवों से साक्षात्कार अनिवार्य है। वे उनके पास थे। आजाद (अकबरी दरबार, भाग 2, पृ. 379) ने इनके शील और स्वभाव की बड़ी प्रशंसा की है। ये मैत्री करने और निभाने में सिद्ध थे। रोचक बातों और मधुर व्यवहार से लोगों को अपना बना लेते थे। चौकस इतने कि दरबार, गली-कूचों, बाजारों-हाटों, प्रजा-सामंतों तथा न्यायालयों की हर हरकत का अपने गुप्तचरों से पता लगाते रहते थे। दूर के थानों व चौकियों से उन्हें नियमित समाचार मिलते रहते थे।

1. यह पत्र गुजरात विजय के तुरन्त बाद लिखा गया था।

2. ईर्ष्यालुओं ने अब्दुरहीम के विरुद्ध उल्टी-सीधी बातें कही थीं।

समयानुकूल अपने को ढालने और परिस्थिति के अनुरूप व्यवहार करनेवाले थे। इनका कथन था कि शत्रु के साथ शत्रुता भी मित्रता के रूप में निभानी चाहिए। इनके बारे में किसी ने शेर कहा था :

एक वित्ते का कद और दिल में सौ गौंठ।

एक मुट्ठी हड्डी और सौ शकलें।।

खानखानाँ तीस वर्ष दक्षिण में रहे। उनके सबके साथ अच्छे सम्बन्ध थे। इसलिए उन पर कपटी, विद्रोही के आरोप लगाये जाते रहे। अबुलफज़ल ने उन्हें बागी तक कहा।

एक प्रसंग से तो यह प्रतीत होता है कि खानखानाँ के उदार हृदय में शत्रु के प्रति उपकार की भावना नहीं थी। कहा जाता है कि पंडितराज जगन्नाथ त्रिशूली ने एक दिन उन्हें स्वरचित एक श्लोक सुनाया जो इस प्रकार था :

प्राप्य चलानधिकारान् शत्रुषु, मित्रेषु बंधुवर्गेषु।

नापकृतं नोपकृतं न सत्कृतं किं कृतं तेन।।

(जिसने चल अधिकार पाकर शत्रु, मित्र और भाई-बंदों का क्रमशः अपकार, उपकार और सत्कार नहीं किया, उसने कुछ नहीं किया।)

खानखानाँ ने दूसरी पंक्ति को बदल कर इस प्रकार कर दिया :

नोपकृतं नोपकृतं नोपकृतं किं कृतं तेन।।

(अधिकार पाकर शत्रु, मित्र सभी का उपकार करना चाहिए।)

असीम ऐश्वर्य भोगते हुए वे विनम्र बने रहे। कहा जाता है खानखानाँ की उपाधि प्राप्त होने पर इन्होंने कई उपदेश एक पत्र पर लिख कर नौकरों को दे दिए थे। जब ये किसी पर क्रोध करते, नौकर वह पत्र पढ़ाकर, इन्हें ठंडा कर देते थे।

खानखानाँ बादशाही ठसक के साथ जीते थे। शाहज़ादों के लिए नियम हुमा पक्षी का पर सिर पर धारण करते थे। आगरा की हवेली को इन्होंने बड़े वैभव तथा साज-सज्जा के साथ अलंकृत कर रखा था। उसमें बैठने योग्य सिंहासन बनवा कर सोने के चोबों पर कारचोबी शमियाना लगवाया था, जिसमें मोतियों की झालरें लगी थीं। छत्र, चँवर आदि राजचिह्न भी थे। कुछ चुगलखोरों ने राजसी वैभव और प्रतीक धारण करने की शिकायत अकबर से की। अकबर स्वयं आया—इन प्रतीकों के प्रयोग का कारण पूछा। इन्होंने अविलम्ब उत्तर दिया—“ये सभी हुज़ूर के लिए ही तैयार करके रखे हैं, ताकि जब आप आवें, मुझे दूसरों से माँगने की लज्जा न उठानी पड़े।” यह सुनकर बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ।

खानखानाँ कला-प्रेमी थे। तानसेन के संगीत पर मुग्ध होकर उन्होंने अपना प्रसिद्ध दोहा लिखा था :

विधना यह जिय जानि कै, सेसहि दिये न कान ।

धरा मेरु सब डोलिहैं, तानसेन के तान ।।

अबुलफज़ल की विद्वत्ता और काव्य-प्रेम के बड़े प्रशंसक थे। गुजरात में बनाया 'बाग-फतह', 'शाहबाड़ी', 'आगरा की हवेली', 'अलवर का त्रिपोलिया' उनके स्थापत्य-प्रेम के प्रतीक थे। जहाँगीर बाग-फतह और शाहबाड़ी के सौंदर्य को देखकर मुग्ध हो गया था।

वे सही अर्थों में सौंदर्य और कला के पारखी थे। एक दृष्टान्त से इसकी पुष्टि होती है—एक दिन खानखाना दरबार जा रहे थे। एक चित्रकार ने कोई चित्र लाकर भेंट किया। उस चित्र में कुर्सी पर बैठी एक सद्यःस्नाता को सिर झुकाकर केश झड़कारते दिखाया गया था। नीचे दासी झाँवे से पैरों को रगड़ रही थी। खानखाना चित्र देखकर दरबार चले गये। लौटकर चित्रकार को बुलाया और पाँच हजार रुपये दिए। चित्रकार ने पूछा—“हुजूर ! ऐसी चित्र में क्या विशेषता है जिसके कारण मुझे पुरस्कृत किया गया है ?” खानखाना ने कहा—“इसमें स्त्री के अधरों की मुस्कराहट और चेहरे के भाव बहुत सुंदर हैं। और इनका रहस्य पैरों में होनवाली गुदगुदाहट में छिपा है। ऐसी कोमल भाव-व्यंजना के लिए पाँच हजार तो क्या, पाँच लाख भी कम हैं।” चित्रकार ने कहा—“बस हुजूर, मैं अपना पुरस्कार पा गया। मैं इतने अमीरों के यहाँ गया पर आपके अतिरिक्त कोई और इस सौंदर्य-बोध का कारण नहीं बता सका था।”

यह घटना उनके सूक्ष्म सौंदर्य-बोध की परिचायक है।

बहुभाषाविद्

रहीम ने अनेक भाषाओं में दक्षता प्राप्त की थी और बड़ी सफलता के साथ तुर्की, फ़ारसी, अरबी, संस्कृत और हिन्दी का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया था। अवधी, ब्रज और खड़ी बोली पर उनका असाधारण अधिकार था। तीनों को रचना-प्रक्रिया का माध्यम बनाते हुए, इनकी भाषा का निखार और अभिव्यक्ति-प्रवाह असंदिग्ध है। उनके काव्य में भाषा-वैविध्य, छन्द-वैविध्य और विषय-वैविध्य है। अलंकारों का युक्तिसंगत कलात्मक प्रयोग है। इन विशेषताओं के कारण ये अकबरी दरबार के अप्रतिम रचनाकार थे। 'मआसिरुल-उमरा' में लिखा है कि वे विश्व की अधिकांश भाषाओं में बातचीत कर सकते थे। तुर्की और फ़ारसी उनकी मातृभाषाएँ थीं। अरबी में इतना अभ्यास था कि मूल भाषा को पढ़े बिना उसका अनुवाद इस प्रकार करते जाते थे कि मानो वे अनुवाद ही पढ़ रहे हों। कहा जाता है, एक बार मक्के के शरीफ (महंत) ने अकबर को एक पत्र भेजा था जिसमें अरबी के कठिन शब्द भर दिए थे। अकबर ने अबुलफज़ल, फतहउल्ला शीराजी और खानखाना को उसे फ़ारसी में अनूदित करने की आज्ञा दी। अबुलफज़ल और

फतहउल्ला तो कोशों की सहायता लेने के लिए उस पत्र को ले जाने लगे, किन्तु खानखाना वहीं दीपक के पास जाकर पढ़ने लगे और साथ ही अनुवाद करने लगे।

अकबर की आज्ञा से उन्होंने यूरोप की भाषाओं (फ्रेंच, अंग्रेजी आदि) का अच्छा अभ्यास कर लिया था। उन देशों से पत्र-व्यवहार करने में खानखाना की सहायता ली जाती थी। ब्लाखमान ने लिखा है—“खानखाना ‘रहीम’ के उपनाम से फारसी तथा साथ ही अरबी, तुर्की, संस्कृत और हिन्दी में सप्रवाह लिखता था और अपने समय का मैसनास माना जाता था।” (आईन-ए-अकबरी, खंड 1, पृ. 332)

अपनी फारसी रचनाओं में ‘रहीम’ तखल्लुस (उपनाम) रखा था, उसे हिन्दी की रचनाओं में रहने दिया। उस समय यह कहा जाता था कि अकबरी दरबार के लोगों में जितनी अधिक काव्य-रचना इन्होंने की उतनी संभवतया किसी और ने नहीं। उनकी यह काव्य-रचना गुण में सबसे बढ़-चढ़कर थी। (मआसिरे रहीमी, भाग 2, पृ. 561)

दानशील

इनकी दानशीलता, लोकप्रियता और काव्य-रुझान की प्रशंसा समकालीन कवियों, शायरों और इतिहासकारों ने मुक्त कंठ से की है। ये हिन्दी के कवियों से घिरे रहते थे और समय-समय पर उन्हें पुरस्कृत करते रहते थे। हिन्दी काव्य-रचना के प्रति ये पूरी तरह समर्पित थे। एक इतिहासकार (अब्दुल बाकी) ने यहाँ तक लिखा है कि इन्होंने जितना हिन्दी कवियों को पुरस्कृत किया, उसका दसवाँ हिस्सा भी फारसी कवियों को नहीं किया। इसके अतिरिक्त फारसी में जितना काव्य लिखा उसका कई गुना हिन्दी में लिखा।

इनकी दानशीलता का उल्लेख करते हुए आज़ाद ने लिखा है—“विद्वानों, फकीरों और शेखों को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से हजारों रुपये, अशर्फियाँ और धन-सम्पत्ति देता था। कवियों और गुणियों का तो मानो माता-पिता था। जो आता था, उसे लगता मानो अपने घर आया हो और इतना धन पाता था कि उसे बादशाह के दरबार में जाने की आवश्यकता नहीं होती थी।”

‘साकीनामा’ की रचना पर खानखाना ने मुल्ला शिकेबी को अठारह सहस्र रुपये का पुरस्कार दिया था। शिकेबी ने सिंध-युद्ध के विवरण की मनसवी भी लिखी थी। उसके एक शेर, जिसका भाव था—जो हुमा पक्षी (मिर्जा जानी) आकाश में प्रसन्नतापूर्वक विहार कर रहा था, उसे पकड़ा और फिर जाल में से छोड़ दिया :

हुमाए कि बर चर्ख कर दी खिराम।

गिरफ़्ती वो आज़ाद कर दी मुदाम॥

पर एक हजार अशर्फी प्रदान की। संयोग से, इस शेर को पढ़ते समय मिर्जा जानी भी दरबार में उपस्थित था। उसने भी प्रसन्न होकर एक हजार अशर्फी दीं और कहा—“ईश्वर

की कृपा है कि उसने मुझे हुमा पक्षी बनाया। यदि यह मुझे गीदड़ भी कह डालता, तो भला मैं इसकी ज़बान पकड़ सकता था।”

ख़ानख़ानाँ से मिलने इराक से मीर मुगीस माहवी हमदानी भारत आया। ख़ानख़ानाँ से बहुत धन पाकर इराक लौट गया। अमीर रफीउद्दीन हैदर ‘राफोई’ ने दो-तीन वार में ही ख़ानख़ानाँ से एक लाख रुपये प्राप्त किये थे। काशी सब्जकारि को ख़ानख़ानाँ से इतना पुरस्कार मिला था कि स्वदेश लौटते समय, वही धन उसकी मृत्यु का कारण बन गया। मुल्ला मुहम्मद रज़ा ‘नवी’ को उसके ‘साकीनामा’ पर दस सहस्र रुपये और एक हाथी पुरस्कार में मिला था। इसके अलावा फाहमी उर्मिजी, हैदर तबरेजी, उसका पुत्र सामरी, दाखिली इस्फहानी आदि शायर ख़ानख़ानाँ द्वारा पुरस्कृत हुए थे।

हिन्दी के अधिकांश कवि इनके द्वारा पुरस्कृत हुए थे। सर्वाधिक राशि—छत्तीस लाख रुपये—कवि गंग को एक छन्द पर प्राप्त हुई थी।

इनकी दानशीलता और उदारता मिथक और लोकाख्यान बन गई थीं। ‘मआसिरुल-उमरा’, ‘मआसिरे रहीमी’, ‘तारीख चगत्ता’ आदि समकालीन ग्रंथों में अनेक किस्सों का उल्लेख हुआ है। उनमें से कुछ हैं :

1. कहा जाता है एक दिन ख़ानख़ानाँ परतों पर हस्ताक्षर कर रहे थे। एक पियादे की परत पर भूल से एक हज़ार दाम के स्थान पर एक हज़ार तनका (रुपया) लिख दिया। भूल प्रतीत होने पर उसे बदला नहीं।

2. कई बार कवियों को उनके वज़न के बराबर सोना तोल कर दिया।

3. ‘तजकरे हुसेनी’ (मीर हुसेन दोस्त संभली) में लिखा है कि किसी मनुष्य ने एक पुरुष को व्याकुल देखकर कारण पूछा। उसने कहा—मैं एक स्त्री पर मोहित हूँ, परंतु वह एक लाख रुपये लिये बिना बात नहीं करती। कोई उपाय हो तो बताओ। उसने कहा, “यदि काव्य-रचना करना जानते हो तो अपना वृत्तान्त लिख कर ख़ानख़ानाँ के पास चले जाओ।” वह एक छंद बना कर ले गया, जिसका भाव था—हे उदार ख़ानख़ानाँ ! एक चन्द्रमुखी मेरी प्यारी है। वह जान माँगे तो कुछ सोच नहीं है। रुपया माँगती है, यही मुश्किल है।

ख़ानख़ानाँ ने मुस्कराकर पूछा—“कितना माँगती है ?” उसने कहा—“एक लाख।” ख़ानख़ानाँ ने एक लाख उस स्त्री को देने के लिए और छह हज़ार रुपये उसकी मौज के लिए दिए।

4. ‘तारीख चगत्ता’ में लिखा है—एक दिन एक निर्धन ब्राह्मण ख़ानख़ानाँ की झोड़ी पर आया। उसने दरबान से कहा—“नवाब से कहो, तुम्हारा साढ़ू आया है।” ख़ानख़ानाँ ने उसे बड़े सम्मान के साथ अपने पास बैठाया। किसी ने पूछा—“यह माँगता आपका साढ़ू कैसे हुआ ?” ख़ानख़ानाँ ने उत्तर दिया—“सम्पत्ति और विपत्ति दो बहनें हैं। पहली हमारे घर है, दूसरी इसके। इस नाते साढ़ू हुआ।” नवाब ने उसे खिलअत पहनाई। सुनहले साज सहित खासा घोड़ा और धन सम्पत्ति प्रदान की।

5. 'वंश भास्कर' (सूर्यमल्ल मिश्रण) में लिखा है—एक दिन दुर्बल ब्राह्मण भूखा-प्यासा मुसलमानों को कोस रहा था। खानखानाँ ने कहा—“तुम्हें खाना-पीना काफी मिलेगा, तुम इस प्रकार न कोसो।” ब्राह्मण ने अपनी पगड़ी उनकी ओर उछालते हुए कहा—“हमारे शास्त्र का कहना है जिसकी बात पर प्रसन्न हो, उसे कुछ दो।” खानखानाँ ने उसकी मैली पगड़ी सिर पर धारण की और उसे पर्याप्त धन दिया।

6. किसी ने खानखानाँ की पालकी में लोहे की पंसेरी (किसी-किसी ग्रंथ में गोला लिखा है) फेंकी। खानखानाँ ने बदले में उतना सोना दिया। किसी ने पूछा—उसने तो आपको मारने का कार्य किया था। इन्होंने उत्तर दिया—नहीं, उसने हमें पारस समझा था।

7. पंसेरी से मिलता-जुलता एक वृत्तान्त है एक दिन खानखानाँ सवारी से उतर रहे थे। बगल में तवा लिए हुए एक बुढ़िया आई और तवा निकाल कर इनके शरीर से मलने लगी। सैनिक दौड़े—खानखानाँ ने उन्हें रोक दिया और तवे के बराबर सोना तुलवा दिया। मुसाहबों के पूछने पर उत्तर दिया कि इसने सुन रखा था कि बादशाह और अमीर लोग पारस हुआ करते हैं। वह इसे परखना चाहती थी।

8. खानखानाँ दरबार की ओर जा रहे थे। एक सवार सैनिकों जैसे हथियार लगाकर सामने आया और सलाम करके खड़ा हो गया। पूछने पर उसने उत्तर दिया—“नौकरी करना चाहता हूँ” पगड़ी पर दो कीलें का रहस्य पूछने पर उसने बताया कि एक कील उस आदमी के लिए है जो नौकर रखे पर वेतन न दे। दूसरी, उस नौकर के वास्ते है जो वेतन लेता हो, पर काम करने में जी चुराता हो। खानखानाँ पे उसका वेतन निश्चित करके, उसकी उम्रभर का वेतन देकर कहा—“लीजिए हजरत, एक कील का बोझ तो सिर से उतार दीजिए। दूसरी कील का अधिकार आपको है।”

9. कहा जाता है खानखानाँ और गौस्वामी तुलसीदास में परस्पर बड़ा स्नेह था। एक निर्धन ब्राह्मण को अपनी कन्या के विवाह की बड़ी चिंता थी। एक पैसा भी पास नहीं था। उसने तुलसीदास के पास आकर अपना दुखड़ा रोया। तुलसीदास ने निम्नलिखित पंक्ति लिख कर उसे खानखानाँ के पास भेजा :

सुरतिय नरतिय नागतिय, सब चाहत अस होय।

खानखानाँ ने ब्राह्मण को बहुत-सा धन दिया और उस पंक्ति की पूर्ति करके तुलसीदास के पास भेजी :

गोद लिए हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय।।

10. जागीर छिन जाने पर रहीम के पास कुछ नहीं बचा। याचक फिर भी घेरे रहते। एक ने घेरा तो उसे रीवा नरेश के पास निम्नलिखित दोहा लिख कर भेजा :

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमान अवध-नरेस।

जा पर विपदा पड़त है, सो आवत यहि देस।।

रीवा नरेश ने उस याचक को एक लाख रुपये दिए।

11. जहाँगीर से परास्त होकर चित्तौड़ के महाराणा अमरसिंह जंगल में घूमते-फिरते थे। एक दिन व्यथित होकर खानखाना के पास निम्न दोहे भेजे :

हाड़ा कूरम राव बड़, गोखाँ जोख करंत।

कहियो खानखानाँ ने, बनचर हुआ फिरंत।।

तुबंरा-सु दिल्ली गई, राठौड़ा कनवज्ज।

राणपयं पै खान ने, वह दिन दीसे अज्ज।।

खानखानाँ ने उनका उत्साहवर्द्धन करते हुए लिख भेजा :

धर रहसी रहसी धरम, खिस जाते खुरसाण।

अमर बिसंभर ऊपरै, नहचौ राखो राण।'

हुआ भी ऐसा ही।

12. खानखानाँ का दस्तख्त बहुत व्यापक होता था। अनेक प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन परोसे जाते। जिस प्रकार इनकी उदारता से सभी प्रकार के लोगों को लाभ पहुँचता था, उसी प्रकार इनका दस्तख्त भी सदा लोगों के लिए खुला रहता था। जिस समय खानखानाँ दस्तख्त पर बैठते, उस समय मकानों में अपने-अपने पद और मर्यादा के अनुसार सैकड़ों व्यक्ति भोजन करने के लिए बैठते थे।

13. एक दिन जहाँगीर तीर चला रहा था। किसी भाट के बड़-चढ़ कर व्यंग्य बोलने पर रुष्ट आज़ा दी कि इसे हाथी के पैरों तले कुचलवा दो। उसने हाज़िर-जवाबी से निवेदन किया :

“हुज़ूर, इस नाचीज़ के लिए हाथी की क्या आवश्यकता है ? एक चूहे या चिड़ड़े का पैर पर्याप्त है ! हाथी का पैर तो खानखानाँ के लिए चाहिए, जो बड़े आदमी हैं।” जहाँगीर ने प्रतिक्रिया जानने के लिए खानखानाँ की ओर देखा। खानखानाँ ने उत्तर दिया—हुज़ूर के सदके से, ईश्वर ने मुझ जैसे तुच्छ व्यक्ति को ऐसा कर दिया कि यह मुझे बड़ा आदमी समझता है। मैंने उसी समय ईश्वर को धन्यवाद दिया और कहा कि जब इसका अपराध क्षमा हो, तब इसे पाँच हज़ार रुपये पुरस्कार दे देना। हुज़ूर की जान और माल को दुआ देगा।

1. एक ग्रंथ में लिखा गया है कि खानखानाँ राणा प्रताप की देशभक्ति और स्वाभिमान के प्रशंसक थे। यह दोहा कुछ बदले पाठ के साथ उनके पास भेजा गया था :

धर रहसी, रहसी धरा, खिस जासे खुरसाण।

अमर बिसंभर ऊपरै, राखियों नहचौ राण।।

14. एक बार दरबार में एक भाट ने चकवा-चकवी के माध्यम से कवित्त कहा, जिसका आशय था—ईश्वर करे, खानखानों की विजय का घोड़ा सुमेरु पर्वत तक जा पहुँचे। वह दानी पर्वत को दान दे देगा। फिर सूर्यास्त न होगा, इसलिए सदा दिन ही दिन रहेगा। हम लोगों का वियोग न होगा और आनन्द ही आनन्द रहेगा। खानखानों ने पूछा—“पंडितजी ! आपकी आयु क्या है ?” उसने निवेदन किया—“35 वर्ष।” उसकी आयु 100 वर्ष की अनुमानित करके पाँच रुपये रोज के हिसाब से कुल राशि खजाने से दिला दी।

15. एक बार खानखानों आगरा से बुरहानपुर की ओर चले। पहले ही पड़ाव पर डेरे पड़े। संध्या समय शामियाने में दरबार लगा था। एक मस्त किन्तु दरिद्र व्यक्ति एक शेर पढ़ते हुए निकला। जिसका आशय था—मुनइम (धनी) व्यक्ति के लिए पहाड़, जंगल और उजाड़ स्थान में किसी चीज का अभाव नहीं होता। वह जहाँ जाता है, वहीं खेमा गाड़ लेता है। और बारगाह बना लेता है। खज़ानची को बुलाकर खानखानों ने उसे एक लाख रुपये दिलाये। वह आशीर्वाद देता हुआ चला गया। यह क्रम सात रोज चला। भिक्षुक ने सोचा—यह अमीर है। ईश्वर जाने कब बदल जाये और सारा धन छीन ले। वह आठवें रोज नहीं गया। खानखानों ने कहा—“हमने पहले ही दिन सत्ताईस लाख रुपये अलग कर लिये थे।” पर वह संकीर्ण-हृदय था। न जाने उसने क्या सोचा ?

16. एक दिन खानखानों की सवारी चली जा रही थी। एक दरिद्र व्यक्ति ने एक शीशी में एक बूँद पानी डालकर दिखाया और शीशी झुकाई। जब उसमें से पानी गिरने लगा तो शीशी को सीधा कर दिया। रंग-रूप से वह अच्छे कुल का प्रतीत होता था। खानखानों उसे अपने साथ ले आये और उसे बहुत पुरस्कार आदि देकर विदा किया। लोगों की जिज्ञासा दूर करते हुए खानखानों ने कहा—उसका अभिप्राय यह था कि एक बूँद प्रतिष्ठा ही किसी तरह बची हुई है और अब यह भी समाप्त होने जा रही है।

17. एक दिन सवारी के समय किसी ने खानखानों पर एक ढेला मारा। सैनिक दौड़कर उसे पकड़ लाये। खानखानों ने उसे हजार रुपये दिलाये। कुछ व्यक्तियों के आपत्ति करने पर खानखानों ने कहा “लोग फले हुए वृक्ष पर पत्थर मारते हैं। इसने मुझे पत्थर मारा—मेरे पास जो फल था, वह दे दिया।”

खानखानों की उदारता और दानशीलता के लोकव्याप्त हिन्दुस्तान ही नहीं, अरब और ईरान तक फैल गये थे। हज़ करने के लिए, मक्का जाते हुए शकेबी अस्फहानी जब अदन पहुँचा तो उसने बच्चों को गीत गाते हुए सुना कि खानखानों आया जिसके प्रताप से क्वारी कन्याओं ने पति पाये, व्यापारियों ने माल बेचे, बादल बरसे और जल-थल भर गये।

1. आगरा से बुरहानपुर तक 27 पड़ाव पड़ते थे।

खानखानों की प्रशंसा में लिखा गया काव्य

अबुलफज़ल ने अकबर दरबार के जितने कवियों का उल्लेख किया है, उनमें अधिकांश खानखानों के आश्रित थे। उरफी नज़ीरी, मुल्ला हयाती ज़ीलानी, शकेबी, अनीसी, मीर मुगीस माहवी हमदानी, काशी सब्जवारी, मुल्ला मुहम्मद रज़ा 'नबी' आदि ने अकबर, जहाँगीर और शाहजादे मुराद की प्रशंसा में काव्य लिखा है, लेकिन इन सबसे बढ़कर उन्होंने खानखानों की प्रशंसा में काव्य लिखा है। ये सभी खानखानों की उदारता, दानशीलता और काव्य-मर्मज्ञता के बड़े प्रशंसक थे और अनेक बार खानखानों से पुरस्कृत हुए थे।

अकबर का नवरत्न शेख फैजी पद व प्रतिष्ठा में खानखानों के समकक्ष था। उसने अपने समकालीन किसी अमीर की प्रशंसा नहीं की है, लेकिन उसे भी कहना पड़ा—खानखानों की उदारता ने चित्त को प्रफुल्लित कर दिया क्योंकि उसे शायरों पर बड़ा भरोसा था इसलिए वह प्रशंसा करने से पूर्व ही पुरस्कार दे देता था।”

फ़ारसी कवियों की तरह अनेक हिन्दी कवियों ने खानखानों के शौर्य और औदार्य की प्रशंसा में काव्य लिखा था। प्रमुख कवियों और उनकी रचनाओं को यहाँ उद्धृत किया जा रहा है :

जाड़ा

महदू शाखाँ के इस चरण का वास्तविक नाम आसकरण था। काफी मोटा था, इसलिए लोग इसे जाड़ा कहते थे। यह महाराणा प्रतापसिंह के छोटे भाई जगमल का वकील बन कर खानखानों से मिला था। उसने खानखानों की प्रशंसा में चार दोहे कहे :

खानखानों नवाब हो मोहि अचंभो एह।

मायो किम गिरि मेरु मन साढ़ तिहस्यी देह॥१॥

खानखानों नवाब रै खाँडै आग खिवंत।

जलवासा नर प्राजलै तृणवाला जीवंत॥२॥

खानखानों नवाब रा अड़िया भुज ब्रह्मण्ड।

पूठै तो है चंडिपुर धार तले नव खण्ड॥३॥

खानखानों नवाब री आदमगीरी धन्न।

यह ठकुराई मेरु गिर मनी न राई मन्न॥४॥

(1. मुझे यह आश्चर्य है कि खानखानों का मेरु पर्वत जैसा मन साढ़े तीन हाथ की देह में कैसे समाया है। 2. खानखानों की तलवार से आग बरसती है पर पानीदार वीर पुरुष तो जल मरते हैं और तृण मुख में लिए (शरण में आये) हुए नहीं जलते। 3. खानखानों की भुजा ब्रह्मांड में जा अड़ी है, जिसकी पीठ पर चंडीपुर (अर्थात् दिल्ली) है और जिसकी तलवार की धार के नीचे नवों खंड हैं। 4. खानखानों का औदार्य धन्य है कि मेरु पर्वत से अपने प्रभुत्व को मन में राई-सा भी नहीं मानते।)

खानखानों ने इस कवि की सुंदर उक्तियों से प्रसन्न होकर प्रत्येक दोहे पर एक-एक लाख रुपये चाहा पर उस स्वामिभक्त चारण ने रुपये न लेकर उसके बदले अपने स्वामी जगमल को बादशाह से जागीर दिलाने की प्रार्थना की। खानखानों की प्रार्थना पर अकबर ने जहाजपुर का परगना जगमल को दे दिया। खानखानों ने जाड़ा की प्रशंसा में एक दोहा भी कहा था :

धर जड़डी अंबर जडा, जड़डा महडू जोय।

जड़डा नाम अलाहदा, और न जड़डा कोय।।

(धरा बड़ी है, आकाश बड़ा है, महडू शाखों का यह चारण बड़ा है और अल्लाह का नाम बड़ा है। इनके अलावा और कोई बड़ा नहीं है।)

केशवदास

सन् 1612 में केशवदास ने 'जहाँगीर जस चन्द्रिका' में खानखानों का यश इस प्रकार वर्णित किया है :

बइरम खॉ पुत्र सो हुमायूँ को साहि सिंधु,
सातो सिंधु पार कीनी कीर्ति करबर की।
शील को सुमेर, सुद्ध साँच को समुद्र, रन,
रुद्रगति 'कैसौदास' पाई हरिहर की।।
पावक प्रताप जाहि जारि जारी प्रक...
...साहिबी समूल मूल ...गर की।
प्रेम परिपूरन पियूष सींचि कल्प बेलि,
पाल लीनी पातसाही साहि अकबर की।। 1।।

ताको पुत्र प्रसिद्ध महि, सब खानन को खान।

भयो खानखानों प्रगट, जहाँगीर तनु-त्रान।। 2।।

साहिजू की साहिबी को रक्षक अनंत गति,
कीनो एक भगवंत हनुवंत वीर सों।

जाको जस 'केसौदास' भूतल के आस पास,
 सोहत छबीली छीरसागर के छीर सों॥
 अमित उदार अति पावन बिचारि चारु,
 जहाँ तहाँ आदरियो गंगाजी के नीर सों।
 खलन के घालिबे को खलक के पालिबे को,
 खानखानाँ एक रामचन्द्र जू के तीर सों॥३॥

जीति जिन गक्खरी, भिखारी कीने भक्खरी जे,
 खानि खुरासानि बाँधि, खरियो पर के।
 चोरि मारे गोरिया बराह बोरि बारिधि में,
 मृग से बिडारे गुजराती लीने डर के॥
 दच्छिन के दच्छ दीह दंती ज्यों बिडारे बीर,
 'केसौदास' अनायास कीने घर घर के।
 साहिबी के रखवार शोभि जैं सभा में दोऊ,
 खानखानाँ मानसिंह सिंह अकबर के॥४॥

गंग

ये अकबरी दरबार के कवियों में प्रमुख थे। अकबर और खानखानाँ दोनों के आश्रित थे। खानखानाँ के विशेष प्रिय कवि थे। अपने हितैतियों की गुणावलीवाले छन्दों में खानखानाँ सम्बन्धी छन्द सर्वाधिक संख्या में उपलब्ध हुए हैं। गंग की प्रशंसा अन्तर्मन से निःसृत हुई है। निम्नलिखित छंद पर खानखानाँ ने उन्हें छत्तीस लाख रुपये दिए थे :

चकित भँवर रहि गयो गमन नहिं करत कमलवन।
 अहि फनि-मनि नहिं लेत तेज नहिं बहत पवन घन॥
 हंस सरोवर तज्यो, चक्क चक्की न मिले अति।
 बहु सुंदरि पधिनी, पुरुष न चहें न करें रति॥
 खल भलित सेस कवि 'गंग' भनि अमित तेज रवि रथ खस्यो।
 खानखान बैरमसुवन जि दिन कोप करि तंग कस्यो॥

रहीम की दानशीलता की प्रशंसा में गंग ने निम्नलिखित दोहा लिख कर भेजा :

सीखे कहाँ नवाबजू ऐसी देनी दैन।
 ज्यों ज्यों कर ऊँचो करो, त्यों त्यों नीचे नैन॥

रहीम ने अत्यन्त विनम्रता और निरभिमानता दिखाकर उत्तर दिया :

देनदार कोउ और है, भेजत सो दिन रैन।
लोग भरम हम पर धरैं, याते नीचे नैन॥

खानखानों से सम्बन्धित उनके अन्य छन्द हैं :

नवल नवाब खानखानों जू तिहारी त्रास,
भागे देश पति धुनि सुनत निसान की।
'गंग' कहै तिनहूँ की रानी रजधानी छाँड़ि,
फिरै बिललानी सुधि भूली खान पान की॥
तेउ मिली करिन हरिन मृग बानरानी,
तिनहूँ की भली भई रच्छा तहाँ प्रान की।
सची जानी करिन, भवानी जानी केहरिन,
मृगन कलानिधि, कपिन जानी जानकी॥ 1॥

हहर हवेली सुनि सटक समरकंदी,
धीर न धरत धुनि सुनत निसाना की।
मछम को ठाठ प्रलय सों पलटबौ 'गंग',
खुरासान अस्पहान लगे एक आना की॥
जीवन उबीठे बीठे मीठे-मीठे महबूबा,
हिए भर न हेरियत अबट वहाना की।
तोसखाने, फीलखाने, खजाने, हुरमखाने,
खाने खाने खबर नवाब खानखाना की॥ 2॥

कश्यप के तरनि और तरनि के करन जैसे,
उदधि के इन्दु जैसे, भए यों जिजाना के।
दशरथ के राम और श्याम के समर जैसे,
ईश के गनेश और कमलपत्र आना के॥
मिंध के ज्यों सुरतरु, पवन के ज्यों हनुमान,
चंद के ज्यों बुध, अनिरुद्ध सिंह बाना के।
तैसेई सपूत खान बैरम के खानखानों,
वैसेई दराब खाँ सपूत खानखानों के॥ 3॥

नवल नवाब खानखानों जू तिहारे डर,
परी है खलक खेल भैल जहूँ तहूँ जू।
राजन की रजधानी डोली फिरें वन-वन,
नैठन को देठें बैठे भरे बेटी वहू जू॥

चहूँ गिरि राहें परी समुद अथाहें अब,
 कहे कवि 'गंग' चक्रवल्ली और चहूँ जू।
 भूमि चली शेष धरि, शेष चल्थो कच्छ धरि,
 कच्छ चल्थो कौल धरि, कौल चल्थो कहूँ जू॥ 4॥

राजे भाजे राज छोड़ि, रन छोड़ि राजपूत,
 राउति छोड़ि राउत रनाई छोड़ि राना जू।
 कहे कवि 'गंग' इत समुद के चहूँ कूल,
 कियो न करे कबूल तिय खसमाना जू॥
 पच्छिम पुरतगाल काश्मीर अबताल,
 खखर को देस बाद्यो भखर भगाना जू।
 रूम-शाम लोम सोम, बलख बदाऊँ सान,
 खैल फैल खुरासान खीझे खानखानाँ जू॥ 5॥

गंग गोंछ मौंछे जमुन, अधरन सरसुती राग।
 प्रकट खानखानाँ भयो, कामद बदन प्रयाग॥ 6॥

धमक निसान सुनि, धमकि तुरान चित्त,
 चमक किरान मुल्लान थहराना जू।
 मारु मरदान काम रुके करवान आदि,
 मेवार के रानहि दवान आनमाना जू॥
 पुर्तगाल पछ माध पलटान उत्तराध,
 गुजरात देश अरु दच्छिन दवाना जू।
 अरवान हवसान हट्टेलान रूम सान,
 खैल भैल खुरासान चढ़े खानखानाँ जू॥ 7॥

वैरम को खानखानाँ बिरच्यो बिराने देश,
 दक्षिण फौजे मारी खगग मुख जो परी।
 माते माते हाथिन के हलका हलाय डारे,
 मानो महा मारुत झकोर डारी झोंपरी॥
 लोहू के अलै लै गंग गिरजा गले लै देत,
 चोंय चोंय खात गीघ चर्ब मुख चोपरी।
 तियन समेत प्रेत हाँके देत बीर खेत,
 खखल खखल हँसे खलन की खोपरी॥ 8॥



बाँधिवे कौं अंजलि, बिलोकिवे कौं काल ढिंग,
 रखिवे कौं पास जिय, मारिवे कौं रोष है।
 जारिवे कौं तन-मन, भरिवे कौं हियो आँखें,
 धरिवे कौं पग मग गनिवे कौं कोस है॥
 खाइवे कौं सौहें, भौहें चढ़िवे-उतारिवे कौं,
 सुनिवे कौं प्रानघात किए अपसोस है।
 बैरम के खानखानाँ तेरे डर बैरी-वधू,
 लीवे कौं उसास मुख दीवे ही कौं दोस है॥ 9 ॥

नवल नवाव खानखानाँ जी रिसाने रन,
 कीने अरि जेर समसेर सर सरजे।
 माँस के पहाड़ सम सानु करि राखे शत्रु,
 कीने घमसान भूमि आसमान लरजे।
 सोणित की धारा सों छुअत चन्द्रमा-सों धार,
 भारी भयो भेद रुद्रन को हा हा बरजे।
 न्यारो बोल बोलत कपाल, मुंडपाल न्यारी,
 न्यारो गजराज, न्यारो मृगराज गरजे॥ 10 ॥

प्रबल प्रचंड बली बैरम के खानखानाँ
 तेरी धाक दीपक दिसान दह दहकी।
 कहै कवि गंग तहाँ भारी सूर-बीरिन के,
 उमड़ि अखंड दल प्रलै पौन लहकी॥
 मच्यो घमसान, तहाँ तोप तीर वान चले,
 मंडि बलवान किरवान कोप गहकी।
 तुंड काटि, मुंड काटि, जोसन जिरह काटि,
 नीमा जामा जीन काटि जिमी आनि ठहकी॥ 11 ॥

ठठा मार्यो खानखानाँ दच्छन अजीम कोका,
 इसकखाँ मारि मारे कसमीर ठौर के।
 साहि के हरामखोर मारे साह कुली खान,
 कहाँ लौं गनाऊँ गुन उमरावन और के॥
 रुस्तम नवाव मारि बालाघाट वार कियो,
 फाजिल फिरंगी मारे टापनि सरोर के।
 वास्ती को काम छह हजार असवार जोरे,
 जैन खाँ जुनारदार मारे इकनौर के॥ 12 ॥

...वैन तद्धैन अदच्छन ।

नगनि जात नागिनि पनाग नायक उरि दृग्गन ।
इक्क बरनि सरवरनि तीर तरवारिन पत पर ।
हार्द हार्द हा, हूँधि हुलिल गाहे तिलंग नर ।
खानखानाँ बैरम सुवन, जदिन कुप्पि कर खग्ग लिय ।
कलमलि सकल दक्खिन मुलक, पट्टन पट्टन पट्ट किय ॥ 13 ॥

कुकुम कुंभि संकुलहि, गहरि हिय गिरि हिय फस्यव ।
दर-दरेर कुब्बेर, बेर जिमि मेरु पलस्यव ।
सरस कमल संपुत्त सूर आथवति पड्ठयव ।
गिरि गगम्मि तिय गम्म, कंठ कामिनिय उचित्यव ॥
भनि 'गंग' अदिव्वय दव्वदिय, दव्विय कर दव्विय गयो ।
खानानखाना बैरम सुवन, जा दिन दखल दक्खिन दयो ॥ 14 ॥

संत

सेर सम सील सम धीरज सुमेर सम,
सेर मम साहेब जमाल सरसाना था ।
करन कुबेर कलि कीरति कमाल करि,
ताले बन्द मरद दरदमंद दाना था ॥
दरबार दरस-परस दरवेसन कौ,
तालिव-तलब कुल आलम बखाना था ।
गाहक गुनी के, सुख चाहक दुनी के बीच,
'संत' कवि दान को खजाना खानखानाँ था ॥

हरिनाथ

ये महापात्र नरहरि के पुत्र, उदार और सुकवि थे । एक दोहे पर मानसिंह से प्राप्त एक लाख रुपये को अन्य कवि के दोहे को सुनकर पुरस्कार में दे दिया था । खानखानाँ से सम्बन्धित इनका छन्द है :

बैरम के तनय खानखानाँ जू के अनुदिन,
दोउ प्रभु सहज सुभाए ध्यान ध्याये हैं ।
कहै 'हरिनाथ' सातों दीप को दिपति करि,
जोह खंड करताल तान सों बजाए हैं ॥

एतनी भगति दिल्लीपति की अधिक देखी,
 पूजत नए को भास तातैं भेद पाए हैं।
 अरि सिर साजे जहाँगीर के पगन तट,
 टूटे फूटे फाटे सिव सीस पै चढ़ाए हैं॥

मंडन

ये बुंदेलखंड के कवि थे। इनका एक ही छन्द मिलता है :
 तेरे गुन खानखानाँ परत दुनी के कान,
 तेरे काज ये गुन आपनो धरत हैं।
 तू तो खग खोलि-खोलि खलन पै कर लेत,
 यह तो पै कर नेक न डरत हैं॥
 'मंडन सुकवि' तू चढ़त नवखंडन पै,
 ये भुज दंड तेरे चढ़िए रहत हैं¹।
 ओहती अटल खान साहब तुरक मान,
 तेरी या कमान तोसों तेहुँसों करत है²॥

प्रसिद्ध

शिवसिंह सरोज के अनुसार यह खानखानाँ के आश्रित कवि थे। इन्होंने अपने आश्रयदाता की प्रशंसा निम्नलिखित छंदों में की है :

गाजी खानखानाँ तेरे धौसा की धुकार सुनि,
 सुत तजि, पति तजि, भाजी बैरी बाल हैं।
 कटि लचकत, बार भार न सँभारि जात,
 परी विकराल जहँ सघन तमाल हैं॥
 कवि 'प्रसिद्ध' तहाँ खगन खिजायो आनि,
 जल भरि-भरि लेती दृगन बिसाल हैं।
 वेनी खेंचे मोर, सीस फूल को चकोर खैचे,
 मुकता की माल ऐंचि खेंचत मराल हैं॥ 1॥

1. चढ़ी न परत है।

2. तेरी एक मान तोसों तोप सो करत है।

सात दीप सात सिंधु थरक-थरक करै,
जाके उर टूटत अखूट गढ़ राना के।
कंपत कुबेर बेर मेर मरजाद छाँड़ि,
एक-एक रोम झर पड़े हनुमाना के॥
धरनि धसक धस, मुसक धसक गई,
भनत 'प्रसिद्ध' खम्भ डोले खुरसाना के।
सेस फन फूट-फूट चूर चकचूर भए,
चले पेसखाना जू नवाब खानखानाँ के॥ 2॥

जलद चरन संचरहि सबर सोहे सत्सय गति।
रुचिर रंग उत्तंग जंग मंडहिं विचित्र अति॥
बैराम-सुवन चित बकसि-बकसि हय देत मंगनन।
करत राग 'परसिद्ध' रोस छंडहिं न एक छिन॥
थरहहिं पलटहिं उच्छलहिं, नच्चत धावत तुरंग इमि।
खंजन जिमि नागरि नैन जिमि, नट जिमि मृग जिमि पवन जिमि॥ 3॥

अलाकुली

इस मुसलमान कवि का खानखानाँ की प्रशंसा में एक ही छंद मिला है :
लंका लायो लूट किधौं सिंहन को कूट-कूट,
हाथी, घोड़े, ऊँट एते पाए तो खजाने हैं।
'अताकुली' कवि की कुबेर ते मित्ताई कीनी,
अनुतुले अनमाए नग औ नगीने हैं॥
पाई हैं तै खान लक्ष भई पहिचान भूल,
रह्यो है जहाँ नए समान कहाँ कीने हैं।
पारस ते पाए किधौं पारा ते कमायो किधौं,
समुद हूँ तो लायो किधौं खानखानाँ दीन्हे हैं॥

तारा

संभवतया यह खानखानाँ का आश्रित कवि था। इसका एक ही छंद मिला है :
जोरावर अब जोर रवि-रथ कैसे जोर,
बने जोर देखे दीठि जोर रहियतु है।
हैन को लिवैया ऐसो, है न को दिवैया ऐसो,
दान खानखानाँ को लहे ते लहियतु है॥

तन मन डारे बाजी द्वै तन सँभारे जात,
 और अधिकाई कहौ कासों कहियतु है।
 पौन की बड़ाई बरनत सब 'तारा' कवि,
 पूरो न परत याते पौन कहियतु है॥

मुकुंद

खानखानाँ के समकालीन मुकुंद कवि का उनकी प्रशंसा में एक छंद मिला है :

कमठ पीठ पर कोल कोल पर फन फनिंद फन।
 फनपति फन पर पुहुमि पुहुमि पर दिगत दीप गन॥
 सप्त दीप पर दीप एक जंबू जग लिक्खिय।
 कवि मुकुंद तहँ भरतखंड उप्परहिं बिसिक्खिय॥
 खानखान बैरम-तनय तिहिं पर तव भुज कल्पतरु।
 जगमगहिं खग्ग भुज अग्ग पर, खग्ग-अग्ग स्वामित्तिवरु॥

अज्ञात कवियों के छंद

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य कवियों के छंद मिले हैं जिनमें छाप न होने से यह कहना कठिन है कि इनके रचनाकार कौन रहे होंगे :

दक्खिन को जूम खानखानाँ जू तिहारो सुनि,
 होत है अचंभो राजा राय उमराइ के।
 एक दिन एक रात और दिन आधए लौं,
 आए जो मुकाबिले को गए ना बिराइ के॥
 बासर के जूमे ते सुमार है-है गिरत हैं,
 भेदें रविमंडल ते मारे हैं लराइ के।
 जामनी के जूमे सेर सूरज को पैड़ों देखे,
 भोर राहगीर दरवाजे ज्यों सराइ के॥१॥

नगर ठठा की रजधानी धूरधानी कीनी,
 धरक्यो खँधारी खान पानी न हलक में।
 छाँड़े हैं तुखार औ बुखार न उपार भरे,
 उजबक उजर कै गयो है पलक में।
 पौरि-पौरि परे सेर ठौर-ठौर पौरि दर्ई,
 खानखानाँ ध्याये ते अवाज है खलक में॥

पिय भाजे तिय छाँड़ि, तिया करे पीउ-पीउ,
बाबा-बाबा बिललात बालक बालक में॥ 2॥

मदन-रूप-तन तबल वीर बाहन गल गज्जह।
बहु सनाह पाखरी द्वार दुंदभि बहु वज्जह॥
बहु साहस उत्थयन फेर थप्पन समर्थ बर।
सहनसाह सिर छत्र ताहि रक्खन समर्थ नर॥
खानानखान बैरम-सुवन, चित्त सहर रस रत्तयो।
धन-मद-जोवन-राज मद, एकहि मद न मत्तयो॥ 3॥

खानखानाँ न जाँचियों, जहाँ दलिद्र न जाय।
कूप नीर अद्रे बिना, नीली धरा न पाय॥ 4॥

खानखान नवाब तें, वाही खग उल्लात।
मुदफर पड़ें न ऊठियो, जैसे अंबा डाल॥ 5॥

खानखानाँ नवाब हो, तुम धुर खैंचनहार।
सेरा सेती नहिं खिंचे, इस दरगाह का भार॥ 6॥

खानखानाँ नवाब तें, हत्त लगाए एम।
मुदफर पड़े न ऊठिये गए जोबसी जेम॥ 7॥

काह रे करजदार झगरत बार-बार,
नैक दिल धीर धर जान इतवारी से।
वेहूँ दर हाल माल, लिखते सवाई साल,
देखना बिहाल मत जानना भिखारी से॥
सेवा खानखानाँ की उमेदवारी दान कीते,
महर महान की सँ होत धन धारी से।
अब घरी पल माँझ, पहर-द्वै-पहर माँझ,
आज-काल आज-काल हरैं द्वै हजारी से॥ 8॥

दिए के हुकुम आगे दिये रह जामिनी कै,
देह के कहन राख्यो देह के चहत हैं।
बखत के नाम-नाम राखत जहान माहिं,
धन के सबद धन-धन जे कहत हैं॥

खानखानौजू की अब ऐसी बकसीस भई,
बाकी बकसीस अरु बखसीस हत हैं।
हाथिन के नाम हाथी रहत तबेलन में,
घोरा दिये घोरा सतरंज में रहत हैं ॥ 9 ॥

काहू की सिकारि स्याल लोमन को खेल होत,
काहू की सिकारि मृग मारि सुख मानो है।
काहू की सिकार साथ सिकरा-सिचान बान,
काहू की सिकार देखो बारुण बखानो है ॥
खानखान की सिकार सिंध पैकै वार पार,
छंद-बंद-फंद खट बरन को ठानो है।
अब ही सुनोगे मास दोय-तीन-चार माँझ,
कौन ही दिसा को पातशाह बाँधि आनो है ॥ 10 ॥

अब्दुरहीम खानखाना की रचनाएँ हिन्दी साहित्य में 'रहीम' के नाम से प्रसिद्ध हैं। 'मआसिरे-रहीमी' और 'मआसिरुल-उमरा' से यह स्पष्ट होता है कि कविता में वे 'रहीम' का तखल्लुस रखते थे। उनकी प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं :

1. दोहावली

कहा जाता है कि रहीम ने 'सतसई' की रचना की थी।¹ किन्तु अभी तक उनकी सतसई की प्रामाणिक प्रति नहीं मिली है। अब तक सम्पादकों ने मुक्तक-संग्रहों और हस्तलिखित ग्रंथों से उनके दोहे चुन कर सम्पादित किए हैं,² किन्तु उनकी संख्या 300 से अधिक नहीं है। इस संदर्भ में यह भी मत व्यक्त किया गया है कि प्राप्त दोहों में शृंगार के दोहे बहुत कम हैं। संभव है कि रहीम रचित सतसई में से किसी ने शृंगार के दोहे निकालकर नीति आदि के दोहों का एक संग्रह कर दिया हो।³ किन्तु इस कथन का कोई आधार प्रस्तुत नहीं किया गया है, न ही रहीम के शृंगारपरक दोहे पृथक् से मिलते हैं।

यद्यपि खानखाना ने अपने दोहों पर 'रहीम' या 'रहिमन' की छाप रखी है किन्तु कुछ विद्वानों का अनुमान है कि इनमें कुछ ऐसे दोहे भी हैं जिनमें भूल से या जान-बूझकर 'रहीम' की छाप रखी गई है; परन्तु वे दूसरे कवियों के हैं।⁴ वस्तुतः दोहावली की प्रामाणिक प्रतियाँ न मिलने से इस अनुमान की सच्चाई परखी नहीं जा सकती। इतना अवश्य है कि रहीम ने सतसई की रचना की होती तो उसकी प्रति या प्रतियाँ कहीं न कहीं सुरक्षित मिलतीं। रहीम का जीवन जिन राजनीतिक, युद्धपरक और प्रशासनिक उत्थानों-पतनों से गुजरा था, उनमें सतसई जैसा ग्रंथ लिखा होगा, यह संभव नहीं लगता।

1. नक़्तेदीलाल तिवारी, बरवै नायिका भेद (भूमिका), पृ. 2

2. 'रहीम कवितावली' (सुरेन्द्रनाथ तिवारी) में 254 दोहे, 'रहिमन-नीति दोहावली' (लक्ष्मीनिधि चतुर्वेदी) में 203 दोहे, 'रहीम' (रामनरेश त्रिपाठी) में 233 दोहे, 'रहिमन विनोद' (अयोध्या प्रसाद) में 268, 'रहीम रत्नावली' (मायाशंकर याज्ञिक) में 270, 'रहिमन विलास' (ब्रजरत्न दास, रामनारायण लाल, इलाहाबाद वाला संस्करण) में 279 दोहे दिए गए हैं। प्रस्तुत ग्रन्थावली में उनके 309 दोहे हैं।

3. मायाशंकर याज्ञिक, 'रहीम रत्नावली' (भूमिका)

4. यह मत ब्रजरत्नदास, अयोध्याप्रसाद तथा मायाशंकर याज्ञिक आदि व्यक्तियों ने दिया है।

2. नगर शोभा

इस शृंगारिक ग्रंथ को रहीम ने स्वतन्त्र रूप से लिखा है। ग्रंथ के प्रत्येक दोहे में रहीम का नाम न होते हुए भी काव्य-भाषा प्रौढ़ता और शृंगारिक भावों की अभिव्यक्ति इसे रहीम की रचना सिद्ध करती है। 'शृंगार-सोरठा' की भाषा से इसकी भाषा साम्य रखती है। रचना के प्रारंभ में—'अथ नगर शोभा खानखानों कृत' लिखा है। इसकी प्राचीन इस्तलिखित प्रति भी मिलती है। इसमें 142 दोहे हैं। रचना का प्रारंभ मंगलाचरण से हुआ है, जिससे सिद्ध होता है कि इस रचना का 'दोहावली' से सम्बन्ध नहीं है।

संभवतया कवि को अकबर के 'मीना बाजार' में एकत्र सभी वर्ण व व्यवसाय की स्त्रियों को देखकर रचना करने की प्रेरणा मिली है। कैथनि, जौहरनि, वरइन, रंगरेजिन, बनजारिन, तुरकित आदि के सौंदर्य-बोध के सजीव बिम्ब उपस्थित करना, रहीम की प्रमुख विशेषता रही है। रहीम का यह काव्य सामन्ती संसर्ग का परिचायक है। इसके दोहे के भावों के आधार पर बरवै लिखे गये हैं किन्तु यह कहना कठिन है कि वे रहीम कृत हैं अथवा अन्य कवि की रचना।

3. बरवै नायिका भेद

इस ग्रंथ की कई हस्तलिखित प्रतियाँ (कृष्णबिहारी मिश्र तथा काशिराज की प्रतियाँ) मिली हैं। पं. नकछेदीलाल तिवारी ने इसका सम्पादन भी किया है।¹ प्रतियों में नायक-नायिका के लक्षण, दोहों में, मतिराम के 'रसराज' से हैं और उदाहरण रहीम के बरवों में हैं।² कहा जाता है रहीम के अनुचर को विवाह के कारण लौटने में कुछ देरी हो गयी थी। उसे रहीम के रुष्ट होने का भय था, तब उसकी स्त्री ने एक बरवै लिखकर भेजा था :

प्रेम प्रीति के बिरवा चलेहु लगाय।
सींचन की सधि लीजो मुरझि न जाय।।

रहीम ने उसे पुरस्कृत कर और छुट्टियाँ बढ़ा दी थीं। तब से बरवै रहीम का प्रिय छन्द हो गया। वेणीमाधवदास रचित 'गुसाई-चरित' के आधार पर यह भी कहा जाता है कि रहीम ने गोस्वामी जी से कहकर 'बरवै रामायण' की रचना कराई थी। इस संदर्भ में यह दोहा उद्धृत किया जाता है :

1. बरवै नायिका भेद, भारत जीवन प्रेस, काशी।

2. काशिराज पुस्तकालय की प्रति के अन्तिम दोहे से यह स्पष्ट है :

लक्षण दोहा जानिए उदाहरन बरवान।

दूनों के संग्रह भए स्त सिंगार निर्मान।।

कवि रहीम बरवै रचे, पठ्ये मुनिवर पास।

लखि तेह सुंदर छंद में, रचना कियेउ प्रकास।।

तुलसीदास के पास बरवै भेजने की घटना सन् 1613 की बताई जाती है किन्तु जिस मूल 'गुसाई-चरित' को तुलसीदास के शिष्य वेणी माधवदास की रचना माना जाता है उसकी अप्रामाणिकता डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने इन शब्दों में सिद्ध की है—'इतिहास लेखकों का कथन है कि सन् 1612 में रहीम दक्षिण भेज दिए गए थे, यहाँ से 1616 में बुला लिए गए। यह बात असंगत-सी जँचती है कि सुदूर दक्षिण से रहीम ने कतिपय बरवै की रचना कर उन्हें कवि के पास भेजा था।'¹

लोक प्रवाद को अविश्वसनीय मान लिया जाये तब भी इतना निश्चित है कि रहीम के बरवों से तुलसीदास को 'बरवै रामायण' लिखने की प्रेरणा मिली थी, चाहे वह स्वतः मिली हो।

रति-ग्रंथों की शैली में लिखा 'बरवै नायिका भेद' अवधी भाषा है। इसके छंद सुगठित, लालित्य एवं कवित्वपूर्ण हैं। यह हिन्दी के नायिका-भेद सम्बन्धी ग्रंथों में सबसे प्राचीन है। इसके 119 छंद प्राप्त हुए हैं।

4. बरवै

रहीम ने अनेक छंदों में काव्य रचना की है किन्तु 'बरवै नायिका भेद' के प्रारंभ में आया छंद यह सिद्ध करता है कि बरवै रहीम का प्रिय छंद रहा है :

कविता कह्यौ दोहा कह्यौ, तुलै न छप्पय छंद।

विरच्यो यहै विचार कै, यह बरवै रस कंद।।

कवि ने 'नायिका-भेद' के बरवों के अतिरिक्त स्वतन्त्र बरवै भी लिखे हैं। यह रचना प्रामाणिक है। इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ मेवात (अलवर) तथा इलाहाबाद से प्राप्त हुई हैं। प्रारम्भ में मंगलाचरण के छह छंद हैं। अब तक इसके 105 छंद प्राप्त हुए हैं। बरवै का कोई क्रम नहीं है। अधिकांश शृंगार रस के तथा कुछ शान्त रस के हैं। अंत में ग्रंथ के समापन सम्बन्धी सूचना या रचना-काल नहीं है। प्रारंभिक छंदों का भाव 'रामचरितमानस' के मंगलाचरण सम्बन्धी छंदों से मिलता-जुलता है। संभव है उन छंदों का भाव ही बरवों में लिखकर गोस्वामी जी के पास भेजा हो।

इस ग्रंथ की भाषा तथा भाव-बोध नायिका-भेद से अधिक प्रौढ़ है, जिससे ज्ञात होता है कि यह नायिका-भेद से परवर्ती रचना है। यह स्वतन्त्र रचना है जिसका प्रारम्भ 'श्री रामोजयति अथ खानखानाँ कृत बरवै प्रारम्भ' से हुआ है। बारहमासा पद्धति पर लिखे

1. तुलसीदास, पृ. 50

गये आषाढ़, सावन, भादों तथा फाल्गुन सम्बन्धी 4 छंद हैं। संभवतया कवि बारहमासा पूरा नहीं कर पाया।

5. शृंगार सौरठ

कहा जाता है (शिवसिंह सेंगर और ब्रजरत्नदास) रहीम को नाम से एक स्वतन्त्र ग्रंथ था। किन्तु वह अप्राप्य है। केवल इसके सात छंद मिले हैं जो ग्रंथावली में 'शृंगार सौरठ' के अन्तर्गत दिए गए हैं। भाव-बोध और भाषिक संरचना की दृष्टि से ये काफी प्रभावी हैं। विप्रलंभ शृंगार का सुंदर नियोजन हुआ है।

6. मदनाष्टक

'मदनाष्टक' के चार पाठ मिलते हैं—1. 'सम्मेलन पत्रिका' में प्रकाशित, 2. असनी से प्राप्त, 3. मुअज़्जमाबाद से प्राप्त और 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में प्रकाशित, 4. 'माधुरी' में प्रकाशित। सम्पादकों ने इनकी प्रमाणिकता का दावा किया है। 'रहीम कवितावली' में नागरी प्रचारिणी वाला 'मदनाष्टक' रहीम कृत माना गया है, मायाशंकर याज्ञिक ने 'रहीम रत्नावली' में 'सम्मेलन पत्रिका' वाले पाठ को शुद्ध माना है। 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के लेख में मुअज़्जमाबाद वाले अष्टक को रहीम की रचना माना गया है। 'ग्रंथावली' में सम्मेलन वाले पाठ को आधार बनाते हुए असनी और 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' वाले अष्टकों को पाद-टिप्पणी में दे दिया गया है।

संस्कृत के अष्टकों की लम्बी परम्परा रही है। रहीम ने संस्कृत शैली को अपनाते हुए अपना 'मदनाष्टक' संस्कृत खड़ी बोली और मालिनी छंद में लिखा है। रहीम का काव्य प्रयोगधर्मी है। जिस प्रकार परम्परागत छन्दों के साथ नये छन्दों में काव्य रचना की ओर वे प्रवृत्त हुए; उसी प्रकार भाषा-वैविध्य को अपनाते हुए उन्होंने फारसी, खड़ी बोली, संस्कृत, अवधी और ब्रज के अतिरिक्त राजधानी और पंजाबी आदि का भी उन्होंने प्रयोग किया है। मिश्र भाषा में काव्य-रचना का प्रयास अमीर खुसरो तथा शार्ङ्ग कर चुके थे। कुछ लोगों ने 'मदनाष्टक' की भाषा को रेखता माना है, जिसका प्रयोग उस समय दक्षिण में होने लगा था।

'मदन' शब्द से यह आभास हो जाता है कि यह रचना शृंगारिक है। इसमें कृष्ण की वंशी के व्यापक प्रभाव, गोपियों की विह्वलता, कृष्ण-गोपी की उत्कट प्रेम-भावना की अभिव्यक्ति हुई है। समग्र वर्णन विप्रलंभ शृंगार के अन्तर्गत स्मृति-संचारी के रूप में हुआ है। लेकिन इसमें भावों की प्रांजलता, माधुर्य और भाषा की प्रौढ़ता नहीं है। खड़ी बोली के प्रयोग की दृष्टि से यह रचना महत्वपूर्ण है। एक-दो स्थलों पर कुछ शब्दों के प्रयोग संस्कृत-विभक्ति सहित हुए हैं।

7. फुटकर पद

इसमें रहीम के चार कवित्तों, पाँच सवैयाँ, दो दोहों तथा दो पदों का संग्रह किया गया है। पदों में कृष्ण का सौंदर्य-बोध है। शब्द-योजना मधुर, ललित पर संगीतात्मक है। सवैयाँ की भाषा परिमार्जित ब्रज है और कवित्तों की खड़ी बोली मिश्रित ब्रज है। यह पृथक् से कोई ग्रंथ नहीं है।

8. संस्कृत श्लोक

यह रहीम के संस्कृत श्लोकों का संग्रह है। कुछ श्लोक मिश्रित भाषाओं में हैं। इनमें निर्वेदमूलक भावनाएँ व्यक्त हुई हैं। दो श्लोकों के भाव इन्होंने क्रमशः एक छप्पय और एक दोहे में व्यक्त किए हैं, उन्हें ग्रंथावली में दे दिया गया है।

9. खेद कौतुक जातकम्

ज्योतिष विषयक इस ग्रंथ के कुछ छन्द संस्कृत श्लोकों के रूप में, कुछ फ़ारसी मिश्रित संस्कृत श्लोकों के रूप में मिलते हैं। ग्रंथ का प्रारंभिक छंद है—‘करोम्यब्दुल रहीमोजहं खुदालाता प्रसादतः। पारसीयपदैर्युक्तं खेटकौतुकजातकम्’।

मंगलाचरण के बाद आया श्लोक है :

फ़ारसी पद मिश्रित ग्रंथाः खलु पंडितैः कृपा पूर्वैः।

संप्राप्य तत्पदपथं करवाणि खेटकौतुकं पद्यम्॥

मंगलाचरण के पश्चात् सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि नक्षत्रों के भावफल के बारह-बारह श्लोक दिए हैं। तत्पश्चात् राहु का भावफल बारह श्लोकों में तथा केतु का एक छंद में दिया गया है। इसमें वर्णित योग और उनके फल ज्योतिष-ग्रंथों से प्रमाणित होते हैं। इसका प्रकाशन ज्ञानसागर प्रेस, बम्बई से हो चुका है। साहित्यिक रचना न होने से इसे ग्रंथावली में स्थान नहीं दिया गया है।

10. फ़ारसी की रचनाएँ

1. वाकेआत बाबरी : बाबर के तुर्की भाषा में लिखित आत्मचरित ‘बाबरनामा’ का रहीम ने ‘वाकेआत बाबरी’ के नाम से फ़ारसी में अनुवाद किया था। ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होने के अतिरिक्त यह एक भावुक तथा उदारमना वीर की हार्दिक भावनाओं का प्रतिबिम्ब भी है। रहीम का यह अनुवाद काफी शुद्ध है। पाश्चात्य तथा भारतीय

विद्वानों ने इस अनुवाद की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।

2. फारसी दीवान : रहीम फारसी के सुकवि थे। उन्होंने एक दीवान लिखा है। उदाहरण के लिए एक गज़ल का कुछ अंश यहाँ उद्धृत किया जा रहा है :

अदाए हक्क मुहब्बत इनायतस्त ज़े दोस्त।

वगरतः खातिरे आशिक बहेच खुसअस्त।।

न जुल्फ दानमो नै दाम ईकदर दानम।

के पाता बेह सरम व हर्चो हस्त दर बंदस्त।।

इन दोनों को ग्रंथावली में नहीं लिया गया है।

इनके अतिरिक्त रहीम द्वारा शतरंज के खेल की एक पुस्तक तथा 'रासपंचाध्यायी' लिखे जाने का उल्लेख मिलता है। ये दोनों अनुपलब्ध हैं। 'भक्तमाल' में प्राप्त कवि के कुछ पदों के आधार पर 'रासपंचाध्यायी' लिखे जाने की कल्पना कर ली गई है।

रहीम का संवेदनशील एवं सचेतनशील व्यक्तित्व था। कूटनीति और युद्धोन्माद के विषय परिवेश ने उनकी संवेदनशीलता को नष्ट नहीं किया था। इससे उनके अनुभव समृद्ध हुए हैं तथा मानव प्रकृति को समझने का अच्छा अवसर मिला है। वे स्वयं रचनाधर्मिता की ओर उन्मुख हुए ही, साथ ही अकबर के दरबार के कवियों और शायरों का केन्द्र बना दिया था। अकबर की धार्मिक सहिष्णुता और उदारवादी नीति ने उन दरारों को पाटने का कार्य किया जो दो सम्प्रदायों के बीच चौड़ी व गहरी होती जा रही थीं। रहीम जन्म से तुर्क होते हुए भी पूरी तरह भारतीय थे। भक्त कवियों जैसी उत्कट भक्ति-चेतना, भारतीयता और भारतीय परिवेश से गहरा लगाव उनके तुर्क होने के अहसास को झुठलाता-सा प्रतीत होता है।

ते' सोम मन आपुनो, धौनों बाँध पवो।
 निजि वासर ताके भै, कुण्डल की ओर॥१॥
 'अधुन-वर्ण'-तरीनो, 'विश्व-मर-मर'नित।
 हरि न बनयो सुखी, सीधो हँस-मल॥२॥
 अथ यवन अयो'कली, बौद्ध ताड़ की ओर।
 रोहमन काम न आव है, जे सोम जय गौर॥३॥
 अन्तर दाव लगी रहे, दुजों न भगद सोर।
 के शिव आपन जानौ, क' तिहि सोम ओर॥४॥
 अनधोन्दी बातें की, सोवत काम जय।
 ताहि लिखावत जगदीश, जे सोम न होय॥५॥
 अनुचित उचित सोम तनु, सगल सोम के भेद।
 ज्यों सति के सजोग ते, यवना आनि पवो॥६॥
 अनुचित अथ न मतिन जयति' सुखदु' गति।
 है सोम अनुचय ते, सुख भला न' बहिः॥७॥
 अथ सोम सुखी कर, 'सुखी' विमल' भै।
 अत दिन मोह' आत है रात न लगे है रो॥८॥
 अथ सोम सुखल गरी, यो वीर यो यो।
 सोम ते ते जगे जगे, दुहे सिने न रो॥९॥

दोहावली

पाठानुसार- १. गी। २. अथ। ३. अयोध्या। ४. न' की।
 ५. जगि जगि जे जो सुख ते न' यो।
 ६. अति अथ सुखी।
 ७. अयोध्या। ८. अथ। ९. अथ। १०. अथ। ११. अथ। १२. अथ। १३. अथ।

तैं¹ रहीम मन आपुनो, कीन्हों चारु चकोर।
निसि बासर लागो रहै, कृष्णचंद्र की ओर॥1॥

अच्युत-चरण²-तरंगिणी,³ शिव-सिर-मालति-माल।
हरि न बनायो सुरसरी, कीजो इंदव-भाल॥2॥

अधम वचन काको⁴फल्पो, बैठि ताड़ की छाँह।
रहिमन काम न आय है, ये नीरस जग माँह॥3॥

अन्तर दाव लगी रहै, धुआँ न प्रगटै सोइ।
कै जिय आपन जानहीं, कै जिहि बीती होइ॥4॥

अनकीन्हीं बातैं करै, सोवत जागै जोय।
ताहि सिखाय जगायबो⁵ रहिमन उचित न होय॥5॥

अनुचित उचित रहीम लघु, करहिं बड़न के जोर।
ज्यों ससि के संजोग तैं, पचवत आगि चकोर॥6॥

अनुचित वचन न मानिए जदपि⁶ गुराइसु⁷ गाढ़ि।
है रहीम रघुनाथ तैं,⁸ सुजस भरत को⁹ बाढ़ि॥7॥

अब रहीम चुप करि रहउ,¹⁰ समुझि¹¹ दिनन कर¹² फेर।
जब दिन नीके¹³ आइ हैं बनत न लगि है देर॥8॥

अब रहीम मुश्किल पड़ी, गाढ़े दोऊ काम।
साँचे से तो जग नहीं, झूठे मिलैं न राम॥9॥

पाठान्तर— 1. जिहि। 2. चरन। 3. तरंगिनी। 4. ते को।

5. जानि अनेती जो करै जागत ही रह सोय।

ताहि जगाय बुझायबो॥

6. यदपि। 7. गुराइस। 8. से। 9. कर। 10. रहिमन चुप है बैठिये। 11. देखि।

12. को। 13. नीके दिन।

अमर बेलि बिनु मूल की, प्रतिपालत है ताहि ।
रहिमन ऐसे प्रभुहिं तजि, खोजत फिरिए काहि ॥ 10 ॥

अमृत ऐसे वचन में, रहिमन रिस की¹ गाँस ।
जैसे मिसिरिहु में मिली, निरस बाँस की² फाँस ॥ 11 ॥

अरज गरज मानैं नहीं, रहिमन ए³ जन चारि ।
रिनिया, राजा, माँगता, काम आतुरी नारि ॥ 12 ॥

असमय परे रहीम कहि,⁴ माँगि जात तजि लाज ।
ज्यों लछमन माँगन गये, पारासर के नाज ॥ 13 ॥

आदर घटे नरेस ढिंग, बसे रहे कछु नाहिं ।
जो रहीम कोटिन मिले,⁵ धिग जीवन जग माहि ॥ 14 ॥

आप न काहू काम के, डार पात फल फूल⁶ ।
औरन को रोकत फिरैं, रहिमन पेड़⁷ बबूल ॥ 15 ॥

आवत काज रहीम कहि, गाढ़े बंधु सनेह ।
जीरन होत न⁸ पेड़ ज्यों, थामे⁹ बरै¹⁰ बरेह ॥ 16 ॥

उरग, तुरंग, नारी, नृपति, नीच जाति, हथियार ।
रहिमन इन्हें सँभारिए, पलटत लगै न बार ॥ 17 ॥

ऊगत जाही किरन सों अथवत ताही काँति ।
त्यों रहीम सुख दुख सवै,¹¹ बढ़त एक ही भाँति ॥ 18 ॥

एक उदर दो चोंच है, पंछी एक कुरंड ।
कहि रहीम कैसे जिए, जुदे जुदे दो पिंड ॥ 19 ॥

एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय¹² ।
रहिमन मूलहिं सींचिबो,¹³ फूलै फलै¹⁴ अघाय¹⁵ ॥ 20 ॥

पाठान्तर— 1. कै। 2. कै। 3. य। 4. कह। 5. मिलैं। 6. छाया दल फल मूल। 7. कूर।
8. होतहिं। 9. थामे। 10. बरहिं। 11. सहे। 12. जाइ। 13. जो तू सींचे मूल को।
14. फूलहि फलहि। 15. अघाइ।

ए^१ रहीम दर दर^२ फिरहिं, माँगि मधुकरी खाहिं।
यारो^३ यारी छोड़िये^४ वे रहीम अब नाहिं^५ ॥ २१ ॥

ओछो^६ काम बड़े करें^७ तौ न बड़ाई होय।
ज्यों रहीम हनुमंत को,^८ गिरधर^९ कहै न कोय ॥ २२ ॥

अंजन दियो तो किरकिरी, सुरमा दियो न जाय^{१०}।
जिन आँखिन सों हरिलख्यो, रहिमन बलि बलि जाय^{११} ॥ २३ ॥

अंड न बौड़ रहीम कहि, देखि सचिक्कन पान।
हस्ती-ढक्का, कुल्हड़िन, सहैं ते तरुवर आन ॥ २४ ॥

कदली, सीप, भुजंग-मुख, स्वाति एक गुन तीन।
जैसी संगति बैठिए, तैसोई फल दीन ॥ २५ ॥

कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय^{१२}।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चंचला होय^{१३} ॥ २६ ॥

कमला थिर न रहीम कहि, लखत अधम जे कोय^{१४}।
प्रभु की सो^{१५} अपनी^{१६} कहै, क्यों न फजीहत होय ॥ २७ ॥

करत निपुनई गुन बिना, रहिमन निपुन^{१७} हजूर।
मानहु टेरेत बिटप चढ़ि मोहि समान को कूर^{१८} ॥ २८ ॥

करम हीन रहिमन लखो, धँसो बड़े घर चोर।
चिंतत ही बड़ लाभ के, जागत है गो भोर ॥ २९ ॥

पाठान्तर— १. ये। २. घर-घर। ३. यारो। ४. छोड़ि दो। ५. अब रहीम वे नाहिं। ६. आछो।

७. छोटे काम बड़े करें। ८. कहैं। ९. गिरिधर। १०. जाइ। ११. जाइ। १२. कोइ।

१३. होइ। १४. कोइ। १५. कैसो। १६. आपनि। १७. गुनी। १८. यहि प्रकार हम कूर।

(२५) इसी भाव का सूर का एक दोहा यों है :

सीप गयो मुक्ता भयो, कदली भयो कपूर।

अहिफन गयो तो विष भयो, संगति को फल सूर ॥

कहि रहीम इक दीप तें, प्रगट सबै दुति होय ।
तन सनेह कैसे दुरै, दृग दीपक जरु दोय ॥ 30 ॥

कहि रहीम धन¹ बढ़ि घटे, जात धनिन की बात ।
घटै बढ़ै उनको कहा, घास बेंचि जे खात ॥ 31 ॥

कहि रहीम य जगत तैं,² प्रीति गई दै टेर³ ।
रहि रहीम नर नीच में, स्वारथ स्वारथ हेर⁴ ॥ 32 ॥

कहि रहीम संपति सगे, बनत बहुत बहु रीत ।
बिपति कसौटी जे⁵ कसे, ते ही साँचे मीत ॥ 33 ॥

कहु रहीम केतिक रही, केतिक गई बिहाय ।
माया ममता मोह परि, अंत चले⁶ पछिताय ॥ 34 ॥

कहु रहीम कैसे निभै, बेर केर को⁷ संग ।
वे डोलत रस आपने,⁸ उनके फाटत अंग ॥ 35 ॥

कहु रहीम कैसे बनै, अनहोनी है⁹ जाय¹⁰ ।
मिला¹¹ रहै औ ना मिलै, तासों कहा बसाय¹² ॥ 36 ॥

कागद को सो पूतरा, सहजहि में घुलि जाय ।
रहिमन यह अचरज लखो, सोऊ खैंचत बाय ॥ 37 ॥

काज परै कछु और है, काज सरै कछु और ।
रहिमन भँवरी¹³ के भए नदी सिरावत मौर ॥ 38 ॥

काम न काहू आवई,¹⁴ मोल रहीम न लेइ ।
बाजू टूटे बाज को, साहब¹⁵ चारा देइ ॥ 39 ॥

पाठान्तर—(30) यह अहमद के नाम सरोज आदि कई ग्रंथों में मिलता है :

एक दीप तें गेह की, प्रगट सबै दुति होय ।

मन की नेह कहाँ छिपै, दृग दीपक जहँ होय ॥

1. निधि। 2. से। 3. टेरी। 4. हेरी। 5. जो। 6. चलै। 7. कर। 8. आपुने।

9. हुइ। 10. जाइ। 11. मिलो। 12. बसाइ। 13. भँउरिन। 14. आव ही। 15. साहेब।

कहा¹ करौं बैकुंठ लै, कल्प बृच्छ² की³ छाँह।
 रहिमन दाख⁴ सुहावनो, जो गल पीतम⁵ बाँह ॥ 40 ॥
 काह कामरी पामरी, जाड़ गए से काज।
 रहिमन भूख बुताइए, कैस्यो मिलै अनाज ॥ 41 ॥
 कुटिलन संग रहीम कहि, साधू बचते नाहिं।
 ज्यों नैना सैना करें, उरज उमेठे जाहिं ॥ 42 ॥
 कैसे निबहैं निबल जन, करि सबलन सों गैर।
 रहिमन बसि सागर बिषे, करत मगर सों वैर ॥ 43 ॥
 कोउ रहीम जनि काहु के, द्वार गये पछिताय।
 संपति के सब जात हैं, विपति सबै लै जाय ॥ 44 ॥
 कौन बड़ाई जलधि मिलि⁶, गंग नाम भो धीम।
 केहि की प्रभुता नहिं घटी⁷, पर घर गये रहीम ॥ 45 ॥
 खरच बढ़यो, उद्यम घट्यो, नृपति निठुर मन कीन।
 कहु रहीम कैसे जिए, थोरे जल की मीन ॥ 46 ॥
 खीरा सिर तें काटिए, मलियत⁸ नमक बनाय।
 रहिमन करुए मुखन को, चहिअत इहै सजाय ॥ 47 ॥

पाठान्तर— 1. कहा। 2. वृक्ष। 3. कै। 4. दाक। 5. प्रीतम-गल-बाँह।

(41) कैसउ मिलै जु नाज।

(42) रहिमन ओछे संग बसि, सुजन बाँचते नाहिं।

(43) यह दोहा वृन्द विनोद में भी है और रहिमन के स्थान पर 'जैसे' है। पाठकों गैर।

6. जाय समानी उदधि में।

7. काकी महिमा नहिं घटी।

(46) रहिमन वे नर क्यों करें, ज्यों थोरे जल मीन।

8. भरिए।

(47) इसका दूसरा पाठांतर है—

खीरा को मुँह काटि के, मलियत लोन लगाय।

रहिमन करुये मुखन की, चहिये यही सजाय ॥ .

खैंचि चढ़नि, ढीली ढरनि, कहहु कौन यह प्रीति ।
 आज काल मोहन गही, बंस दिया की रीति ॥ 48 ॥
 खैर, खून¹, खाँसी, खुसी, बैर, प्रीति, मदपान ।
 रहिमन दाबे ना दबैं, जानत सकल जहान ॥ 49 ॥
 गरज आपनी आपसों, रहिमन कही न जाय² ।
 जैसे कुल की³ कुलबधू, पर घर जात लजाय⁴ ॥ 50 ॥
 गहि⁵ सरनागति राम की,⁶ भवसागर की⁷ नांव ।
 रहिमन जगत उधार कर, और न कछू उपाव ॥ 51 ॥
 गुन ते लेत रहीम जन, सलिल कूप ते काढ़ि ।
 कूपहु⁸ ते कहूँ होत है, मन काहू को⁹ बाढ़ि ॥ 52 ॥
 गुरुता फबै¹⁰ रहीम कहि, फबि आई है जाहि ।
 उर पर कुच नीके लगैं, अनत बतोरी आहि ॥ 53 ॥
 चरन छुए मस्तक छुए, तेहु¹¹ नहिं छाँड़ति पानि ।
 हियो¹² छुवत प्रभु छोड़ि दै, कहु रहीम का जानि ॥ 54 ॥
 चारा प्यारा जगत में, छाला हित कर लेय¹³ ।
 ज्यों रहीम आटा लगे, त्यों मृदंग स्वर देय¹⁴ ॥ 55 ॥
 चाह गई चिंता मिटी, मनुआ बेपरवाह ।
 जिनको कछू न चाहिए, वे साहन के साह ॥ 56 ॥
 चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध-नरेस ।
 जा पर बिपदा पड़त¹⁵ है, सो आवत यह देस ॥ 57 ॥
 चिंता बुद्धि परेखिए, टोटे परख त्रियाहि ।
 उसे कुबेला परखिए, ठाकुर गुनी किआहि ॥ 58 ॥

पाठान्तर— 1. इश्क, मुश्क। 2. जाइ। 3. कै। 4. लजाइ। 5. गहु। 6. सरनागत राम। 7. कै।
 8. कूपहुँ। 9. कर। 10. फबड़। 11. तऊ। 12. हिए। 13. लेइ। 14. देइ। 15. परति।
 (57) आए राम रहीम कवि, किए जती को भेष।
 जाको विपता परति है, सो कटती तुव देस ॥

छिमा बड़न¹ को चाहिए, छोटेन को उतपात।

का रहिमन हरि को घट्यो, जो भृगु मारी लात॥ 59 ॥

छोटेन सो सोहैं बड़े, कहि रहीम यह रेख²।

सहसन को हय बाँधियत, लै दमरी की³ मेख॥ 60 ॥

जब लगि जीवन जगत में, सुख दुख मिलन अगोट।

रहिमन फूटे गोट ज्यों, परत दुहुँन सिर चोट॥ 61 ॥

जब लगि बित्त न आपुने, तब लगि मित्र न कोय⁴।

रहिमन अंबुज अंबु बिनु, रवि नाहिंन हित होय⁵॥ 62 ॥

ज्यों नाचत कठपूतरी, करम नचावत गात।

अपने हाथ रहीम ज्यों, नहीं आपुने हाथ॥ 63 ॥

जलहिं मिलाय⁶ रहीम ज्यों, कियो आपु सम छीर।

अँगवहि आपुहि आप त्यों, सकल आँच की भीर॥ 64 ॥

जहाँ गाँठ तहँ रस नहीं, यह रहीम जग जोय।

मँड़ए तर की गाँठ में, गाँठ गाँठ रस होय॥ 65 ॥

जानि अनीती जे करें, जागत ही रह सोइ।

ताहि सिखाइ जगाइबो, रहिमन उचित न होइ॥ 66 ॥

जाल परे जल जात बहि, तजि मीनन को मोह।

रहिमन मछरी नीर को, तऊ न छाँड़त छोह॥ 67 ॥

जे गरीब पर हित करें⁷, ते रहीम बड़ लोग।

कहाँ सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग॥ 68 ॥

पाठान्तर— 1. बड़न। 2. लेख। 3. कै।

(61) रहिमन यह संसार में सब सुख मिलत अगोट।

जैसे फूटे नरद के, परत दुहुन सिर चोट॥

4. कोई। 5. रवि ताकर रिपु होय, होइ। 6. मिलाइ।

(65) यह दोहा कुछ हेर-फेर के साथ 'अहमद' के नाम भी मिलता है। 7. को आदरें।

जे रहीम बिधि बड़ किए, को कहि दूषन काढ़ि।
 चंद्र दूबरो कूबरो, तऊ नखत तें बाढ़ि॥69॥
 जे सुलगे ते बुझि गए, बुझे ते सुलगे नाहिं।
 रहिमन दोहे प्रेम के, बुझि बुझि कै सुलगाहिं॥70॥
 जेहि अंचल दीपक दुरयो, हन्यो सो ताही गात।
 रहिमन असमय के परे, मित्र शत्रु है जात॥71॥
 जेहि रहीम तन मन लियो, कियो हिए बिच भौन।
 तासों दुख सुख कहन की, रही बात अब कौन॥72॥
 जैसी जाकी बुद्धि है, तैसी कहै बनाय।
 ताकों बुरो न मानिए, लेन कहाँ सो¹ जाय॥73॥
 जसी परै सो सहि रहै, कहि² रहीम यह देह।
 धरती पर ही परत है, शीत घाम औ मेह॥74॥
 जैसी तुम हमसों करी, करी करो जो तीर।
 बाढ़े दिन के मीत हौ, गाढ़े दिन रघुबीर॥75॥
 जो अनुचितकारी तिन्हें, लगै अंक परिनाम।
 लखे उरज उर बेधियत, क्यों न होय मुख स्याम॥76॥
 जो घर ही में घुस³ रहे, कदली सुपत सुडील।
 त रहीम तिनतें भले, पथ के अपत करील॥77॥
 जो पुरुषारथ ते कहँ, संपति मिलत⁴ रहीम।
 पेट लागि वैराट घर, तपत रसोई भीम॥78॥

(69) तुलसी सतसई में इसी भावार्थ का यह दोहा भी है :

होहिं बड़े लघु समय सह, तो लघु सकहिं न काढ़ि।

चंद्र दूबरो कूबरो, तऊ देखत तें बाढ़ि॥

पाठान्तर— 1. सूँ। 2. कह।

(75) रहिमन।

3. घुसि। 4. मिलति।

जो बड़ेन को लघु कहें, नहिं रहीम घटि जाँहि¹।

गिरधर मुरलीधर कहे, कछु दुख मानत नाहिं॥79॥

जो मरजाद चली सदा, सोई तौ ठहराय।

जो जल उमगै पारतें, सो रहीम बहि जाय॥80॥

जो रहीम उत्तम प्रकृति², का करि सकत कुसंग।

चंदन विष व्यापत नहिं, लपटे रहत भुजंग॥81॥

जो रहीम ओछो बढै, तौ अति ही इतराय³।

प्यादे सों फरजी भयो, टेढ़ो टेढ़ो जाय⁴॥82॥

जो रहीम करिबो हुतो, ब्रज को इहै हवाल।

तौ काहे कर पर धर्यौ, गोवर्धन गोपाल⁵॥83॥

जो रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय⁶।

बारे उजियारो लगे, बढे अँधेरो होय⁷॥84॥

जो रहीम गति दीप की, सुत सपूत की सोय⁸।

बड़ो उजेरो तेहि रहे, गए अँधेरे होय⁹॥85॥

जो रहीम जग मारियो, नैन बान की चोट।

भगत भगत कोउ बचि गये, चरन कमल की ओट॥86॥

जो रहीम दीपक दसा, तिय राखत पट ओट।

समय परे ते होत है, वाही पट की चोट॥87॥

पाठान्तर— 1. बड़ेन सों कोऊ घटि कहे, नहिं वै कछु घटि जाहिं।

(80) तेहि प्रमान चलिबो भलो, जो सब दिन ठहराय।

उमरि चले जल पार तें, तौ रहीम बहि जाय॥

2. रहिमन उत्तम प्रकृति को।

3. छोटी बढै, बढ़त करत उतपात।

4. तिरछो तिरछो जात।

5. तौ कत मातहिं दुख दियो, गिरधर धरि गोपाल।

6. कै सोइ। 7. होइ। 8. सोइ। 9. अँधेरो होइ।

जो रहीम पगतर परो, रगरि नाक अरु सीस।
निठुरा आगे रोयबो, आँस गारिबो खीस॥८८॥

जो रहीम तन हाथ है, मनसा कहूँ किन जाहि^१।
जल में जो छाया परी, काया भीजति नाहिं॥८९॥

जो रहीम भावी कतौ,^२ होति आपुने^३ हाथ।
राम न जाते हरिन संग, सीय न रावन साथ॥९०॥

जो रहीम होती कहूँ, प्रभु-गति अपने हाथ।
तौ कोधौं केहि मानतो, आप बड़ाई साथ॥९१॥

जो विषया संतन तजी, मूढ़ ताहि लपटाय।
ज्यों नर डारत वमन कर, स्वान स्वाद सों खाय॥९२॥

टूटे सुजन मनाइए, जौ टूटे सौ बार।
रहिमन फिरि फिरि पोहिए, टूटे मुक्ताहार॥९३॥

तन^४ रहीम है कर्म बस, मन राखो ओहि^५ ओर।
जल में उलटी नाव ज्यों, खैंचत गुन के जोर॥९४॥

तब ही लौ^६ जीबो भलो, दीबो होय न धीम।
जग में रहिबो कुचित गति, उचित न होय रहीम^७॥९५॥

तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहि^८ न पान।
कहि रहीम पर काज हित, संपति सँचहि सुजान॥९६॥

तासों ही कछु पाइए, कीजे जाकी आस।
रीते सरवर पर गये, कैसे बुझै पियास॥९७॥

पाठान्तर— १. जो रहीम तन हाथ है, मनसा कहूँ किन जाहि।

२. कतहूँ। ३. आपने। ४. तनु। ५. उहि। ६. लगि।

७. बिन दीबो जीबो जगत, हमहिं न रुचै रहीम॥ ८. पियत।

तेहि प्रमान चलिबो भलो, जो सब दिन ठहराइ।

उमड़ि चलै जल पार ते, जो रहीम बढि जाइ॥ 98 ॥

तैं रहीम अब कौन है, एती खैंचत बाय।

खस कागद को पूतरा¹, नमी माँहि खुल जाय॥ 99 ॥

थोथे बादर क्वॉर के, ज्यों रहीम घहरात।

धनी पुरुष निर्धन भये, करै पाछिली बात॥ 100 ॥

थोरो किए बड़न की, बड़ी बड़ाई होय।

ज्यों रहीम हनुमंत को, गिरधर कहत न कोय॥ 101 ॥

दादुर, मोर, किसान मन, लग्यो रहै घन माँहि।

रहिमन चातक रटनि हूँ, सरवर को कोउ नाहिं॥ 102 ॥

दिव्य दीनता के रसहिं, का जाने जग अंधु।

भली बिचारी दीनता, दीनबन्धु से बन्धु॥ 103 ॥

दीन सबन को लखत है², दीनहिं लखै न कोय³।

जो रहीम दीनहिं लखै, दीनबन्धु सम होय⁴॥ 104 ॥

दीरघ दोहा अरथ के, आखर थोरे आहिं।

ज्यों रहीम नट कुण्डली, सिमिटि कूदि चढ़ि जाहिं॥ 105 ॥

दुख नर सुनि हाँसी करै, धरत रहीम न धीर।

कही सुनै सुनि सुनि करै, ऐसे वे रघुबीर॥ 106 ॥

पाठान्तर— 1. पूतरा।

(101) रहीम ने हनुमान जी के पहाड़ उठाने दूसरा भाव भी घटाय़ा है जैसे :

ओछो काम बड़ो करै, ती न बड़ाई होय।

इसमें हनुमान जी का बड़प्पन दिया है।

2. दीन लखै सब जगत को।

3. कोइ।

4. रहिमन भली सो दीनता नरो देवता होय।

दुरदिन परे रहीम कहि, दुरथल जैयत भागि।
ठाढ़े हूजत घूर पर, जब घर लागत आगि॥ 107 ॥

दुरदिन परे रहीम कहि, भूलत सब¹ पहिचानि।
सोच नहीं वित हानि को², जो न होय हित हानि॥ 108 ॥

देनहार कोउ और है, भेजत सो दिन रैन।
लोग भरम हम पै धरें³, याते नीचे नैन॥ 109 ॥

दोनों रहिमेन एक से, जौ लौं बोलत नाहिं।
जान परत हैं काक पिक, ऋतु बसंत के माँहिं॥ 110 ॥

धन थोरो इज्जत बड़ी, कह रहीम का बात।
जैसे कुल की कुलबधू, चिथड़न माँह⁴ समात॥ 111 ॥

धन दारा अरु सुतन सों, लगो रहे नित चित्त⁵।
नहिं रहीम कोउ लख्यो, गाढ़े दिन को मित्त⁶॥ 112 ॥

धनि रहीम गति मीन की⁷, जल बिछुरत जिय जाय।
जिअत कंज तजि अनत⁸ बसि, कहा भौर को⁹ भाय॥ 113 ॥

धनि रहीम जल पंक को¹⁰ लघु जिय पिअत अघाय¹¹।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत¹² पिआसो जाय¹³॥ 114 ॥

धरती की सी रीत है, सीत घाम औ मेह।
जैसी परे सो सहि रहै, त्यों रहीम यह देह¹⁴॥ 115 ॥

पाठान्तर— 1. विकल सबै। 2. कर 3. धरें।

(109) इसका दूसरा पाठान्तर है :

कछुक सोच धन हानि को, बहुत सोच हित हानि।

(110) वृन्द विनोद में भी यह दोहा है जिसमें केवल इतना पाठान्तर है—भले बुरे सब एक से।

4. माँहि। 5. माँ, रहत लगाए चित्त।

6. क्यों रहीम खोजत नहीं। गाढ़े दिन को मित्त॥

7. कै। 8. अंत। 9. कर। 10. कहैं। 11. अघाइ। 12. पाल। 13. पियासो जाइ। 14. इसी

संग्रह का 74 वाँ दोहा देखिए।

धूर धरत नित सीस पै^१, कहू रहीम केहि काज ।

जेहि रज मुनिपत्नी तरी, सो ढूँढ़त गजराज^२ ॥ 116 ॥

नहिं रहीम कछु रूप गुन, नहिं मृगया अनुराग ।

देसी स्वान जो राखिए, भ्रमत भूख ही लाग ॥ 117 ॥

नात नेह दूरी भली, लो रहीम जिय जानि ।

निकट निरादर होत है, ज्यों गड़ही को पानि ॥ 118 ॥

नाद रीझि तन देत मृग, नर धन हेत^३ समेत^४ ।

ते रहीम पशु से अधिक, रीझेहु कछू न देत ॥ 119 ॥

निज कर क्रिया रहीम कहि, सुधि भावी के हाथ ।

पाँसे अपने हाथ में, दाँव न अपने हाथ ॥ 120 ॥

नैन सलोने अधर मधु, कहि रहीम घटि कौन ।

मीठो भावै लोन^५ पर, अरु मीठे पर लौन ॥ 121 ॥

पन्नग बेलि पतिव्रता, रति सम सुनो सुजान ।

हिम रहीम बेली दही, सत जोजन दहियान ॥ 122 ॥

परि रहिबो मरिबो भलो, सहिबो कठिन कलेस ।

बामन है बलि को छल्यो, भलो दियो^६ उपदेस ॥ 123 ॥

पसरि पत्र झँपहि पितहिं, सकुचि देत ससि सीत ।

कहु रहीम कुल कमल के, को बैरी को मीत ॥ 124 ॥

पाठान्तर— 1. गजरज ढूँढ़त गलिन में, छार उछारत सीस पर ।

2. जिहि रज मुनि-पतनी तरी, तिहि खोजत गजराज ॥

3. देत । 4. लुटाई । 5. लौन । 6. दीन्हेड ।

पात पात को सींचिबो, बरी बरी को लौन ।
रहिमन ऐसी बुद्धि को, कहो बरैगो कौन¹ ॥ 125 ॥

पावस देखि रहीम मन, कोइल साधे मौन ।
अब दादुर बक्ता भए, हमको पूछत कौन ॥ 126 ॥

पिय बियोग तें दुसह दुख, सूने दुख ते अंत ।
होत अंत ते फिर मिलन, तोरि सिधाए कंत ॥ 127 ॥

पूरुष पूजें देवरा, तिय पूजें रघुनाथ ।
कहँ रहीम दोउन बनै, पँडो-बैल को साथ ॥ 128 ॥

प्रीतम² छवि नैनन बसी, पर छवि कहाँ समाय ।
भरी सराय रहीम लंखि, पथिक आप फिर जाय³ ॥ 129 ॥

प्रेम पंथ ऐसो कठिन, सब कोउ निबहत नाहिं ।
रहिमन मैन-तुरंग चढ़ि, चलिबो पावक माहिं ॥ 130 ॥

फरजी सह न ह्य सकै, गति टेढ़ी तासीर ।
रहिमन सीधे चालसों, प्यादो होत वजीर ॥ 131 ॥

बड़ माया को दोष यह, जो कबहुँ घटि जाय ।
तो रहीम मरिबो भलो, दुख सहि जिय बलाय ॥ 132 ॥

बड़े दीन को दुख सुनो, लेत दया उर आनि ।
हरि हाथी सो कब हुतो, कहु रहीम पहिचानि ॥ 133 ॥

1. 'तुलसी सतसई' का यह दोहा इसी आशय का है :

पात पात को सींचिबो, बरी-बरी को लौन ।

तुलसी छोटे चतुरपन, कलि दुह के कहु कौन । (काज सरेगो कौन ।)

(125) तुलसी पावस के समय, घरी कोकिलन मौन ।

अब तो दादुर बोलिहैं, हमहिं पूछिहै कौन ।

पाठान्तर— 2. मोहन

3. ज्यों, पथिक आय फिर जाय ॥

(133) अरज सुने लरजै तुरत, गरज मिटाई आनि ।

कहि रहीम का दिन हुती, हरि हाथी पहिचानि ॥

बड़े पेट के भरन को, है रहीम दुख बाढ़ि।
यातें हाथी हहरि कै, दयो दाँत द्वै काढ़ि॥ 134॥

बड़े बड़ाई नहिं तजैं, लघु रहीम इतराइ।
राइ करौंदा होत है, कटहर होत न राइ॥ 135॥

बड़े बड़ाई ना करैं, बड़ो न बोलैं बोल।
रहिमन हीरा कब कहै, लाख टका मेरो मोल॥ 136॥

बढ़त रहीम धनाढ्य धन, धनौ¹ धनी को² जाइ।
घटै बढै बाको कहा, भीख माँगि जो खाइ॥ 137॥

बसि कुसंग चाहत कुसल, यह रहीम जिय सोस।
महिमा घटी समुद्र की, रावन बस्यो परोस॥ 138॥

बाँकी चितवन चित चढ़ी, सूधी तौ कछु धीम।
गाँसी ते बढि होत दुख, काढ़ि न कढ़त³ रहीम॥ 139॥

बिगरी बात बनै नहीं, लाख करौ किन कोय।
रहिमन फाटे दूध को, मथे न माखन होय⁴॥ 140॥

बिपति भए धन ना रहे, रहे⁵ जो लाख करोर।
नभ तारे छिपि जात हैं, ज्यों रहीम भए⁶ भोर॥ 141॥

भजौं तो काको मैं भजौं⁷, तजौं तो काको आन।
भजन तजन ते बिलग हैं, तेहि रहीम तू जान॥ 142॥

पाठान्तर— 1. धनै। 2. के।

(138) वृन्द का एक दोहा इसी आशय का है :

दुर्जन के संसर्ग तें, सज्जन लहत कलेस।

ज्यों दशमुख अपराध तें, बंधन लखौ बलेस॥

3. सकत। अपत।

4. सुनि अठिलै हैं लोग सब, बाँटि न लैहें कोइ॥

5. होय। 6. भै। 7. भजउं तो काको मैं भजऊं।

भलो भयो धर ते छुट्यो, हँस्यो सीस परिखेत ।
काके काके नवत हम, अपन¹ पेट के हेत ॥ 143 ॥

भार झोंकि के भार में, रहिमन उतरे पार ।
पै बूड़े मझधार में, जिनके सिर पर भार ॥ 144 ॥

भावी काहू ना दही, भावी दह भगवान² ।
भावी ऐसी प्रबल है, कहि रहीम यह जान ॥ 145 ॥

भावी या उनमान को, पांडव बनहि रहीम ।
जदपि गौरि सुनि बाँझ है, बरु³ है संभु अजीम ॥ 146 ॥

भीत गिरी पाखान की, अररानी वहि ठाम ।
अब रहीम धोखो यहै, को लागै केहि काम ॥ 147 ॥

भूप गनत लघु गुनिन को, गुनी गनत लघु भूप ।
रहिमन गिर तें भूमि लौं, लखो⁴ तो एकै रूप ॥ 148 ॥

मथत मथत माखन रहै, दही मही बिलगाय ।
रहिमन सोई मीत है, भीर परे ठहराय⁵ ॥ 149 ॥

मनिसिज माली की⁶ उपज, कहि रहीम नहिं जाय ।
फल श्यामा के उर लगे, फूल श्याम उर आय⁷ ॥ 150 ॥

मन से कहाँ रहीम प्रभु, दृग सो कहाँ दिवान ।
देखि दृगन जो आदरै, मन तेहि हाथ बिकान ॥ 151 ॥

मंदन के मरिहू⁸ गये, औगुन गुन⁹ न सिराहिं¹⁰ ।
ज्यों रहीम बाँधहु बँधे, मरहा¹¹ है अधिकाहिं ॥ 152 ॥

पाठान्तर—(144) जाके सिर अस भार, सो कस झोंकत भात अस ।
रहिमन उतरे पार, भार झोंकि सब भार में ॥

1. अधम । 2. दही एक भगवान । 3. डरु वर । 4. न लखो ।

5. 'शंकर' सो बहुमोल जो भीर परे ठहराय ।

6. कै । 7. मौय । 8. मारेहु । 9. गनि । 10. सराहि । 11. मरहा ।

मनि मानिक महँगे किये, ससतो तृन जल नाज ।
याही ते हम जानियत, राम गरीब निवाज ॥ 153 ॥

महि नभ सर पंजर कियो, रहिमन बल अवसेष ।
सो अर्जुन बैराट घर, रहे नारि के भेष ॥ 154 ॥

माँगे घटत रहीम पद, कितौ करौ बढ़ि काम ।
तीन पैग बसुधा करो, तरु बावनै नाम ॥ 155 ॥

माँगे मुकरि न को गयो, केहि न त्यागियो साथ ।
माँगत आगे सुख लह्यो, ते रहीम रघुनाथ ॥ 156 ॥

मान सरोवर ही मिले, हंसनि मुक्ता भोग ।
सफरिन भरे रहीम सर, बक-बालकनहिं जोग ॥ 157 ॥

मान सहित विष खाय के, संभु भये जगदीस ।
बिना मान^२ अमृत पिये, राहु कटायो सीस ॥ 158 ॥

माह मास लहि टेसुआ, मीन परे थल और ।
त्यों रहीम जग जानिये, छुटे आपुने ठौर ॥ 159 ॥

मीन कटि जल धोइये, खाये अधिक पियास ।
रहिमन प्रीति सराहिये, मुयेउ मीत कै आस ॥ 160 ॥

मुक्ता कर करपूर कर, चातक जीवन जोय^३ ।
एतो बड़ो रहीम जल, ब्याल बदन विष होय^४ ॥ 161 ॥

पाठान्तर— 1. विपुल बलाकनि जोग ।

2. बिना आदर अमृत भख्यो ।

(159) इसका दूसरा पाठ है :

माह मास कर भिनुसरा, मीन सुखी नहिं सौर ।

क्यों मछरी जग ना जियइ, बिछुरे आपन ठौर ॥

3. चातक तृष हर सोय । 4. कुथल परे विष होय ।

इसी भाव का सूरदास जी का एक दोहा है :

सीष गयो मुक्ता भयो, कदली भयो कपूर ।

अहिफन गयो तो विष भयो, संगति को फल सूर ॥

मुनि नारी पाषाण ही, कपि पसु गुह मातंग ।
तीनों तारे राम जू, तीनों मेरे अंग ॥ 162 ॥

मूढ़ मंडली में सुजन, ठहरत नहीं बिसेषि ।
स्याम कचन में सेत ज्यों, दूर कीजिअत देखि ॥ 163 ॥

यद्यपि अवनि अनेक हैं, कूपवंत¹ सरिताल ।
रहिमन मानसरोवरहि², मनसा करत मराल ॥ 164 ॥

यह न रहीम सराहिये, देन लेन की प्रीति ।
प्रानन बाजी राखिये, हारि होय कै जीति ॥ 165 ॥

यह रहीम निज संग लै, जनमत जगत न कोय ।
बैर, प्रीति, अभ्यास, जस, होत होत ही होय ॥ 166 ॥

यह रहीम मानै नहीं, दिल से नवा जो होय ।
चीता, चोर, कमान के, नये³ ते अवगुन होय ॥ 167 ॥

याते जान्यो मन भयो, जरि बरि भस्म बनाय⁴ ।
रहिमन जाहि लगाइये, सो रूखो है जाय ॥ 168 ॥

ये रहीम फीके दुवौ, जानि महा संतापु ।
ज्यों तिय कुच आपुन गहे, आप बड़ाई आपु ॥ 169 ॥

ये रहीम दर-दर⁵ फिरै, माँगि मधुकरी खाहिं ।
यारो⁶ यारी छाँड़ि⁷ देउ,⁸ वे रहीम अब नाहिं⁹ ॥ 170 ॥

यों रहीम गति बड़ेन की,¹⁰ ज्यों तुरंग व्यवहार ।
दाग दिवावत आपु तन, सही होत असवार ॥ 171 ॥

पाठान्तर— 1. तोयवंत । 2. एकै मानसर ।

(164) इसी आशय का तुलसीदास जी का एक दोहा है :

जद्यपि अवनि अनेक सुख, तोय तासु रस ताल ।

संतत तुलसी मानसर, तदपि न तजहिं मराल ॥

3. नए । 4. बलाय । 5. घर-घर । 6. यारो । 7. छोड़ि । 8. दो ।

9. अब रहीम वे नाहिं । 10. कै ।

यों रहीम तन¹ हाट में, मनुआ गयो बिकाय।
ज्यों जल में छाया परे, काया भीतर नाँय ॥ 172 ॥

यों रहीम सुख दुख सहत, बड़े लोग सह साँति।
उवत चंद जेहि भाँति सो, अथवत ताही² भाँति ॥ 173 ॥

रन, बन, ब्याधि, विपत्ति में, रहिमन मरै³ न रोय⁴।
जो रच्छक⁵ जननी जठर, सो हरि गये कि सोय⁶ ॥ 174 ॥

रहिमन अती न कीजिये⁷, गहि रहिये निज कानि⁸।
सैजन अति फूले तऊ डार पात की हानि ॥ 175 ॥

रहिमन अपने गोत को¹⁰, सबै चहत उत्साह।
मृग उछरत आकाश को¹¹, भूमी खनत बराह¹² ॥ 176 ॥

रहिमन अपने¹³ पेट सौ, बहुत कह्यो समुझाय।
जो तू अन खाये रहे, तोसों को¹⁴ अनखाय ॥ 177 ॥

रहिमन अब वे बिरछ कहँ, जिनकी¹⁵ छाँह गंभीर।
बागन बिच बिच देखिअत, सेंहुड़, कुंज, करीर ॥ 178 ॥

रहिमन असमय के परें, हित अनहित है जाय।
बधिक बधै मृग बानसों, रुधिरे देत बताय ॥ 179 ॥

रहिमन अँसुआ नैन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ।
जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देइ ॥ 180 ॥

पाठान्तर— 1. तनु। 2. वाही। 3. मरउ। 4. रोइ। 5. रसक। 6. न सोइ।

7. रहिमन अति मत कीजिये।

8. वित्त आपुनो जानि।

9. अतिसै फूले सहजनो, डार पात के हानि ॥

10. कहँ। 11. आकास कहँ। 12. भूमि खनत बाराह। 13. मैं था।

14. का काहू। 15. जिनके।

रहिमन आँटा के लगे, बाजत है दिन राति ।

॥ १८१ ॥ धिउं शक्कर जे खात हैं, तिनकी कहा बिसाति ॥ १८१ ॥

रहिमन उजली प्रकृत को^१, नहीं नीच को^२ संग ।

॥ १८२ ॥ करिया बासन कर गहे, कालिख लागत अंग ॥ १८२ ॥

रहिमन एक दिन वे रहे, बीच न सोहत हार ।

॥ १८३ ॥ वायु जो ऐसी बह गई, वीचन परे पहार^३ ॥ १८३ ॥

रहिमन ओछे नरन सों, बैर भलो ना प्रीति ।

॥ १८४ ॥ काटे चाटे स्वान के, दोऊ भाँति विपरीति^४ ॥ १८४ ॥

रहिमन कठिन चितान^५ ते, चिंता को^६ चित चेत ।

॥ १८५ ॥ चिता दहति निर्जीव को^७, चिंता जीव समेत ॥ १८५ ॥

रहिमन कबहुँ बड़ेन के, नाहिं गर्व को लेस ।

॥ १८६ ॥ भार धरैं संसार को, तऊ कहावत सेस ॥ १८६ ॥

रहिमन करि सम बल नहीं, मानत प्रभु की धाक ।

॥ १८७ ॥ दाँत दिखावत दीन है, चलत घिसावत नाक ॥ १८७ ॥

रहिमन कहत सुपेट सों, क्यों न भयो तू पीठ ।

॥ १८८ ॥ रीते अनरीते करै, भरे बिगारत दीठ ॥ १८८ ॥

रहिमन कुटिल कुठार^८ ज्यों, करि डारत द्वै टूक^९ ।

॥ १८९ ॥ चतुरन के कसकत रहे, समय चूक की^{१०} हूक ॥ १८९ ॥

रहिमन को कोउ का करै, ज्वारी, चोर, लबार ।

॥ १९० ॥ जो पति-राखनहार हैं, माखन-चाखनहार ॥ १९० ॥

पाठान्तर— १. कहँ। २. कर। ३. इसे सम्मन का भी कहा जाता है। ४. विपरीत।

५. चिताहु। ६. कहँ। ७. कहँ।

(१८८) कहि रहीम या पेट ते, दुहु विधि दीन्ही पीठि।

भूखे भीख मँगावई, भरे डिगावे डीठि॥

८. कुल्हार। ९. करि डारै दुइ टूक। १०. कै।

रहिमन खोजे ऊख में, जहाँ रसन की खानि¹।
जहाँ गाँठ तहँ रस नहीं, यही प्रीति में हानि॥ 191॥

रहिमन खोटी आदि की, सो परिनाम लखाय।
जैसे दीपक तम भखै, कज्जल वमन कराय॥ 192॥

रहिमन गली है साँकरी, दूजो ना ठहराहिं।
आपु अहै तो हरि नहीं, हरि तो आपुन नाहिं॥ 193॥

रहिमन घरिया रहँट की, त्यों ओछे की डीठ।
रीतिहि सनमुख होत है, भरी दिखावै पीठ॥ 194॥

रहिमन चाक कुम्हार को, माँगे दिया न देइ।
छेद में डंडा डारि कै, चहै नाँद लै लेइ॥ 195॥

रहिमन छोटे नरन सों², होत बड़ो³ नहीं काम।
मढ़ो दमामो ना बने⁴, सौ⁵ चूहे के चाम॥ 196॥

रहिमन जगत बड़ाई की, कूकुर की पहिचानि।
प्रीति करै मुख चाटई, बैर करे तन हानि॥ 197॥

रहिमन जग जीवन बड़े, काहु न देखे नैन।
जाय दशानन अछत ही, कपि लागे गथ⁶ लेन॥ 198॥

रहिमन जाके बाप को, पानी पिअत न कोय।
ताकी गैल आकाश लौं, क्यों न कालिमा होय॥ 199॥

पाठान्तर— 1. रहिमन खोजो ऊख में, कहाँ न रस के खानि।

2. से। 3. बड़े। 4. जात है। 5. कहूँ।

(196) बिहारी का एक दोहा इसी भाव का यों है :

कैसे छोटे नरनु ते, सरत बड़न को काम।

मढ़यो दमामो जात क्यों, कहि चूहे के चाम॥

(197) व्यास बड़ाई जगत की।

यह दोहा व्यास जी की साखी की हस्तलिखित प्रति में दिया है।

6. गढ़।

रहिमन जा डर निसि परै, ता दिन डर सिय कोय ।
पल पल करके लागते, देखु कहाँ धौं होय ॥ 200 ॥

रहिमन जिह्वा बावरी, कहि गइ सरग पताल ।
आपु तो कहि भीतर रही, जूती खात कपाल ॥ 201 ॥

रहिमन जो तुम कहत थे, संगति ही गुन होय ।
बीच उखारी रमसरा, रस काहे ना होय ॥ 202 ॥

रहिमन जो¹ रहिबो चहै, कहै वाहि के दाँव² ।
जो बासर को निस कहै, तौ कचपची दिखाव ॥ 203 ॥

रहिमन ठहरी धूरि की, रही पवन ते पूरि ।
गाँठ युक्ति की खुलि गई, अंत धूरि को धूरि ॥ 204 ॥

रहिमन तब लागि ठहरिए, दान मान सनमान ।
घटत मान देखिय जबहिं, तुरतहि करिय पयान ॥ 205 ॥

रहिमन तीन प्रकार ते, हित अनहित पहिचानि ।
पर बस परे, परोस बस, परे मामिला जानि ॥ 206 ॥

रहिमन तीर की चोट ते, चोट परे बचि जाय ।
नैन बान की चोट ते, चोट परे मरि जाय ॥ 207 ॥

रहिमन थोरे दिनन को³, कौन करे मुँह स्याह ।
नहीं छलन को परतिया, नहीं करन को⁴ ब्याह ॥ 208 ॥

रहिमन दानि दरिद्र तर⁵, तऊ जाँचबे⁶ योग ।
ज्यों सरितन सूखा परे, कुआँ खनावत लोग⁷ ॥ 209 ॥

पाठान्तर— 1. जहँ। 2. जो भाव। 3. कहँ। 4. कहँ। 5. दरिद्रबस।

6. माँगिबे।

7. सरिता सर जल सूखि गो, कुआँ खनत सब लोग।

रहिमन दुरदिन के परे, बड़ैन किए घटि काज ।
पाँच रूप पांडव भए, रथवाहक नल राज ॥ 210 ॥

रहिमन देखि बड़ैन को¹, लघु न दीजिये डारि ।
जहाँ काम आवे सुई, कहा करे तलवारि² ॥ 211 ॥

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो³ छिटकाय⁴ ।
टूटे से फिर⁵ ना मिले, मिले⁶ गाँठ⁷ परि जाय ॥ 212 ॥

रहिमन धोखे भाव से, मुख से⁸ निकसे राम ।
पावत पूरन परम गति, कामादिक को धाम ॥ 213 ॥

रहिमन निज मन की⁹ बिथा, मन ही राखो गोय¹⁰ ।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहैं कोय ॥ 214 ॥

रहिमन निज संपत्ति बिना, कोउ न बिपति सहाय ।
बिनु पानी ज्यों जलज को, नहिं रवि सकै बचाय ॥ 215 ॥

रहिमन नीचन संग बसि, लगत कलंक न काहि ।
दूध कलारी कर गहे¹¹, मद समुझै सब ताहि¹² ॥ 216 ॥

रहिमन नीच प्रसंग ते, नित प्रति लाभ विकार ।
नीर चोरावै¹³ संपुटी, मारु सहै घरिआर¹⁴ ॥ 217 ॥

रहिमन पर उपकार के, करत न यारी¹⁵ बीच ।
मांस दियो शिवि¹⁶ भूप ने, दीन्हों हाड़ दधीच ॥ 218 ॥

पाठान्तर— 1. कहँ । 2. तरवारि । 3. तोरउ । 4. चटकाय । 5. फिरि ।

6. मिलै । 7. गाँठि । 8. ते । 9. कै । 10. राखहु गोइ ।

11. दूध कलारिन हाथ लखि । 12. मद कहँ (समुझहि) सब ताहि ।

वृंद ने इसी भाव को इस प्रकार कहा है :

जिहि प्रसंग दूखन लगै, तजिये ताको साय ।

मदिरा मानत है जगत, दूध कलाली हाथ ॥

13. चुरावत । 14. सहत घरियार । 15. पारै । 16. सिवि ।

रहिमन पानी राखिये, बिनु पानी सब सून ।
पानी गए न ऊबरै, मोती, मानुष, चून ॥ 219 ॥

रहिमन प्रीति न कीजिए, जस खीरा ने कीन ।
ऊपर से तो दिल मिला, भीतर फाँकें तीन ॥ 220 ॥

रहिमन पेटे सों कहत, क्यों न भये तुम पीठि ।
भूखे मान बिगारहु, भरे बिगारहु दीठि ॥ 221 ॥

रहिमन पैड़ा प्रेम को, निपट सिलसिली गैल ।
बिछलत पाँव पिपीलिका, लोग लदावत बैल ॥ 222 ॥

रहिमन प्रीति सराहिए, मिले होत रँग दून ।
ज्यों जरदी हरदी तजै, तजै सफेदी चून ॥ 223 ॥

रहिमन ब्याह बिआधि है, सकहु तो जाहु बचाय ।
पायन बेड़ी पड़त है, ढोल बजाय बजाय¹ ॥ 224 ॥

रहिमन बहु भेषज करत, ब्याधि न छाँड़त² साथ ।
खग मृग बसत अरोग बन, हरि अनाथ के नाथ ॥ 225 ॥

रहिमन बात अगम्य की, कहन सुनन को नाहिं ।
जे जानत ते कहत नाहिं, कहत ते जानत नाहिं ॥ 226 ॥

रहिमन बिगरी आदि की³, बनै न खरचे दाम ।
हरि बाढ़े आकाश लौं, तऊ बावनै नाम ॥ 227 ॥

पाठान्तर—(224) फूले फूले फिरत हैं, आज हमारो ब्याड ।
तुलसी गाय बजाय के, देत काठ में पाँउ ॥

(225) राम भरोसे जे रहें, परबत पर हरयायें ।
तुलसी विरवा वाग के, सींचेहु पै मुझायें ॥

1. वजाइ बजाइ । 2. छाँड़ति । 3. कै ।

रहिमन भेषज के किए, काल जीति जो जात ।
बड़े बड़े समरथ भए¹, तौ न कोउ मरि जात ॥ 228 ॥

रहिमन मनहिं लगाइ के², देखि लेहु किन कोय³ ।
नर को बस करिबो कहा, नारायण बस होय ॥ 229 ॥

रहिमन मारग प्रेम को, मत⁴ मतिहीन मझाव ।
जो डिगिहै तो फिर कहूँ, नहिं धरने को पाँव ॥ 230 ॥

रहिमन माँगत बड़ेन की⁵, लघुता होत अनूप ।
बलि मख माँगत को⁶ गए, धरि बावन को रूप ॥ 231 ॥

रहिमन यहि न सराहिये, लैन दैन कै प्रीति ।
प्रानहिं बाजी राखिये, हारि होय कै जीति ॥ 232 ॥

रहिमन यहि संसार में, सब सों मिलिये धाइ ।
ना जानैं केहि रूप में, नारायण मिलि जाइ ॥ 233 ॥

रहिमन याचकता गहे, बड़े छोट है जात ।
नारायण हू को भयो, बावन आँगुर गात ॥ 234 ॥

रहिमन या⁷ तन सूप है, लीजै जगत पछोर ।
हलुकन को⁸ उड़ि जान दै⁹, गरुए राखि बटोर ॥ 235 ॥

रहिमन यों सुख होत है, बढ़त देखि निज गोत ।
ज्यों बड़री अँखियाँ निरखि, आँखिन को सुख होत ॥ 236 ॥

रहिमन रजनी ही भली, पिय सों होय मिलाप ।
खरो दिवस किहि काम को रहिबो आपुहि आप ॥ 237 ॥

पाठान्तर— 1. भये 2. कै। 3. कोइ। 4. बिन बूझै मति जाव। 5. कै। 6. हरि।
7. यह। 8. कहैं। 9. जातु है।

रहिमन रहिबो वा¹ भलो, जो लौं सील समूच ।
सील ढील जब देखिए, तुरत कीजिए कूच ॥ 238 ॥

रहिमन रहिला की भली, जो परसै चित लाय ।
परसत मन मैलो करे, सो मैदा जरि जाय ॥ 239 ॥

रहिमन राज सराहिए, ससिसम सुखद जो होय² ।
कहा बापुरो³ भानु है, तपै⁴ तरैयन खोय⁵ ॥ 240 ॥

रहिमन राम न उर धरै, रहत विषय लपटाय⁶ ।
पसु खर खात सवाद सों, गुर गुलियाए खाय⁷ ॥ 241 ॥

रहिमन रिस को⁸ छाँड़ि कै, करौ⁹ गरीबी भेस ।
मीठो बोलो नै चलो, सबै तुम्हारो देस ॥ 242 ॥

रहिमन रिस सहि तजत नहिं, बड़े प्रीति की¹⁰ पौरि ।
मूकन मारत आवई, नींद बिचारी दौरी ॥ 243 ॥

रहिमन रीति सराहिए, जो घट गुन सम होय ।
भीति आप पै डारि कै, सबै पियावै तोय ॥ 244 ॥

रहिमन लाख भली करो¹¹, अगुनी अगुन न जाय ।
राग सुनत पय पिअत हू, साँप सहज धरि खाय ॥ 245 ॥

रहिमन वहाँ न जाइये, जहाँ कपट को¹² हेत ।
हम तन ढारत डेकुली, सींचत अपनो खेत ॥ 246 ॥

पाठान्तर— 1. वाँ, वह। 2. जो बिघु की विधि होय। 3. निगोड़े तरनि को। 4. तप्यो। 5. खोइ।
6. लपटाइ। 7. खाइ।

(241) राम नाम नहिं लेत है, रह्यौ विषय लपटाय।

घास चरै पसु आप सों, गुड़ गास्यो ही खाय ॥

(243) रहिमन बड़े निरादरै, तजिय न नाकी पौरि।

8. कह। 9. करहु। 10. कर। 11. करौ। 12. कर।

रहिमन वित्त अधर्म को, जरत न लागै बार।

11 822 चोरी करि होरी रची, भई तनिक में छार॥ 247 ॥

रहिमन विद्या बुद्धि नहिं, नहीं धरम, जस, दान।

11 823 भू पर जनम वृथा धरै¹, पसु बिनु पूँछ बिषान॥ 248 ॥

रहिमन बिपदाहू भली, जो थोरे दिन होय।

11 824 हित अनहित या जगत में, जानि परत सब कोय॥ 249 ॥

रहिमन वे नर मर चुके, जे कहूँ माँगन जाहिं।

11 825 उनते पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं॥ 250 ॥

रहिमन सीधी चाल सों, प्यादा होत वजीर।

11 826 फ़रजी साह न हुइ सकै, गति टेढ़ी तासीर॥ 251 ॥

रहिमन सुधि सबतें भली, लगै जो बारंबार।

11 827 बिछुरे मानुष फिरि मिलें², यहै जान अवतार॥ 252 ॥

रहिमन सो न कछू गनै, जासों, लागे नैन।

11 828 सहि³ के सोच बेसाहियो, गयो हाथ को चैन⁴॥ 253 ॥

राम नाम जान्यो⁵ नहीं, भइ पूजा में हानि।

11 829 कहि रहीम क्यों मानिहैं, जम के किंकर कानि॥ 254 ॥

राम नाम जान्यो नहीं, जान्यो सदा उपाधि⁶।

11 830 कहि रहीम तिहिं आपुनो, जनम गँवायो बादि॥ 255 ॥

रीति प्रीति सब सों भली, बैर न हित मित गोत।

11 831 रहिमन याही जनम की⁷, बहुरि न संगति होत॥ 256 ॥

रूप, कथा⁸, पद, चारु, पट⁹, कंचन, दोहा¹⁰, लाल।

11 832 ज्यों ज्यों निरखत सूक्ष्मगति, मोल रहीम बिसाल॥ 257 ॥

पाठान्तर— 1. जन्म वृथा भू पर घरेउ। 2. मिलें। 3. सहिं। 4. कर। 5. जानेउ। 6. उपादि। 7. कै।

8. कथानक। 9. पद। 10. दूबा।

रूप बिलोकि रहीम तहँ, जहँ जहँ मन लागि जाय¹ ।
थाके² ताकहिं आप बहु, लेत छोड़ाय छोड़ाय³ ॥ 258 ॥

रोल बिगाड़े राज नै, मोल बिगाड़े माल ।
सनै सनै सरदार की, चुगल बिगाड़े चाल ॥ 259 ॥

लालन⁴ मैन तुरंग चढ़ि, चलिबो पावक माँहिं ।
प्रेम-पंथ ऐसो कठिन, सब कोउ निबहत नाहिं ॥ 260 ॥

लिखी रहीम लिलार में, भई आन की⁵ आन ।
पद कर काटि बनारसी, पहुँचे मगरु⁶ स्थान ॥ 261 ॥

लोहे की न लोहार का; रहिमन कही विचार ।
जो हनि मारे सीस में, ताही की तलवार ॥ 262 ॥

बरु रहीम कानन भलो, बास करिय फल भोग⁷ ।
बंधु मध्य धनहीन है⁸ बसिबो उचित न योग⁹ ॥ 263 ॥

बहै प्रीति नहिं रीति वह, नहीं पाछिलो हेत ।
घटत घटत रहिमन घटै, ज्यों कर लीन्हें रेत ॥ 264 ॥

बिधना यह जिय जानि कै, सेसहि दिये न कान ।
धरा मेरु सब डोलि हैं, तानसेन के तान ॥ 265 ॥

बिरह रूप धन तम भयो, अवधि आस उद्योत ।
ज्यों रहीम भादों निसा, चमकि जात खद्योत ॥ 266 ॥

पाठान्तर— 1. रूप रहीम बिलोकतहिं, मन जहँ-जहँ लागि जाइ ।

2. थाक्यो । 3. छुड़ाइ-छुड़ाइ । 4. रहिमन । 5. कै ।

6. मगहस्थान, मगहरथान ।

7. वरु रहीम कानन बसिय, असन करिय फल तोय ।

8. गति दीन हुई । 9. कोय ।

वे रहीम नर धन्य हैं, पर उपकारी अंग¹।

11 872 बाँटनवारे को लगे, ज्यों मेंहदी को रंग॥ 267 ॥

सदा नगारा कूच का,² बाजत आठों जाम।

11 873 रहिमन या जग आइ कै, को करि रहा मुकाम॥ 268 ॥

सब को³ सब कोऊ करै, कै सलाम कै राम।

11 082 हित रहीम तब जानिए, जब कछु अटकै काम॥ 269 ॥

सबै कहावै लसकरी, सब⁴ लसकर कहँ जाय⁵।

11 182 रहिमन सेल्ह⁶ जोई सहै, सो जागीरें खाय॥ 270 ॥

समय दसा कुल देखि कै, सबै करत सनमान।

11 282 रहिमन दीन अनाथ को,⁷ तुम बिन को भगवान॥ 271 ॥

समय परे ओछे बचन, सब के सहै⁸ रहीम।

11 382 सभा दुसासन पट गहे, गदा लिए रहे⁹ भीम॥ 272 ॥

समय पाय फल होत है, समय पाय झरि जाय।

11 482 सदा रहे नहिं एक सी, का रहीम पछिताय॥ 273 ॥

समय लाभ सम लाभ नहिं, समय चूक सम चूक।

11 582 चतुरन चित रहिमन लगी, समय चूक की हूक॥ 274 ॥

सरवर के खग एक से, बाढ़त प्रीति न धीम।

11 682 पै मराल को¹⁰ मानसर, एकै ठौर रहीम॥ 275 ॥

सर सूखे पच्छी¹¹ उड़ै, औरे सरन समाहिं।

11 782 दीन मीन बिन¹² पच्छ के, कहु रहीम कहँ जाहिं॥ 276 ॥

स्वारथ रचन¹³ रहीम सब,¹⁴ औगुनहू जग माँहि।

बड़े बड़े बैठे लखौ,¹⁵ पथ रथ कूबर छाँहि॥ 277 ॥

पाठान्तर— 1. वे रहीम नर धन्य हैं, पर उपकारी अंग।

2. कर। 3. कहँ। 4. जो, या। 5. जाइ। 6. सैल। 7. कै। 8. सहउ।

9. रहे गहि। 10. के। 11. पंछी। 12. बिनु। 13. रुचत। 14. कह। 15. लखहु।

स्वासह तुरिय उच्चरै, तिय है निहचल चित्त ।

पूत परा घर जानिए, रहिमन तीन पवित्त ॥ 278 ॥

साधु सराहै साधुता¹, जती जोखिता जान ।

रहिमन² साँचै सूर को, बैरी करै बखान ॥ 279 ॥

सौदा करो सो करि चलौ, रहिमन याही बाट ।

फिर सौदा पैहो नहीं, दूरि जान है बाट ॥ 280 ॥

संतत संपति जानि कै, सब को सब कुछ देत³ ।

दीनबंधु बिनु दीन की, को रहीम सुधि लेत ॥ 281 ॥

संपति भरम गँवाइ कै, हाथ रहत कछु नाहिं ।

ज्यों रहीम ससि रहत है, दिवस अकासहिं माहिं ॥ 282 ॥

ससि की सीतल चाँदनी, सुंदर, सबहिं सुहाय ।

लगे चोर चित में लटी, घटि रहीम मन आय⁴ ॥ 283 ॥

ससि, सुकेस, साहस, सलिल, मान सनेह रहीम⁵ ।

बढ़त बढ़त बढ़ि जात हैं, घटत घटत घटि सीम ॥ 284 ॥

सीत हरत, तम हरत नित, भुवन भरत नहिं चूक ।

रहिमन तेहि रबि को कहा, जो घटि लखै उलूक ॥ 285 ॥

हरि रहीम ऐसी करी, ज्यों कमान सर पूर ।

खैंचि अपनी ओर को, डारि दियो पुनि दूर ॥ 286 ॥

हरी हरी करुना करी, सुनी जो सब ना टेर ।

जब डग भरी उतावरी, हरी करी की बेर ॥ 287 ॥

पाठान्तर— 1. सो सती । 2. रज्जब

3. संपति संपतिवान को, संपति वारो देत । संतत संपति जान के ।

4. घटी रहम न । इसका एक पाठ इस प्रकार है :

ससि की सुखद सुचाँदनी, सुन्दर सबै सुहात ।

लगी चोर चित ज्यों लटी, घट रहीम मन काति ॥

5. सुकेस के स्थान पर सकोच और मान के स्थान पर साजि ।

हित रहीम इतऊ करै, जाकी जिती बिसात।

॥ २८८ ॥ नहिं यह रहै न वह रहै, रहै कहन को बात^१ ॥ २८८ ॥

होत कृपा जो बड़ैन की^२ सो कदाचि घटि जाय।

॥ २८९ ॥ तौ रहीम मरिबो भलो, यह दुख सहो^३ न जाय ॥ २८९ ॥

होय^४ न जाकी छाँह ढिग, फल रहीम अति दूर।

॥ २९० ॥ बढिहू^५ सो बिनु काज ही, जैसे तार खजूर^६ ॥ २९० ॥

सोरठा

ओछे को^७ सतसंग, रहिमन तजहु अँगार ज्यों।

॥ २९१ ॥ तातो जारै अंग, सीरो^८ पै करो लगै ॥ २९१ ॥

रहिमन कीन्हीं प्रीति, साहब^९ को भावै नहीं।

॥ २९२ ॥ जिनके अगनित मीत, हमैं गरीबन को गनै ॥ २९२ ॥

रहिमन जग की रीति, मैं देख्यो रस ऊख में।

॥ २९३ ॥ ताहू में परतीति, जहाँ गाँठ^{१०} तहँ रस नहीं ॥ २९३ ॥

जाके सिर अस भार, सो कस झोंकत भार अस।

॥ २९४ ॥ रहिमन उतरे पार, भार झोंकि सब भार में ॥ २९४ ॥

पाठान्तर— १. इसका एक पाठ इस प्रकार है :

हित अनहित रहिमन करै, जाके कहाँ बिसात।

ना यह रहे न वह रहे, रहे कहन कहँ बात ॥

२. के। ३. सह्यो। ४. छाँह तो बाकी कठिन है।

५. बाढ़ेहु, बाढ़यो।

६. कवीर का इसी भाव को व्यक्त करने वाला दोहा है :

बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।

पंथी को छाया नहीं, फल लागै अति दूर ॥

(२९१) यह भाव अहमद ने यों कहा है :

अहमद तजै अँगार ज्यों, छोटे को संग साथ।

सीरो कर कारो करै, तातो जारै हाय ॥

रहिमन नीर पखान, बूझै¹ पै सीझै नहीं।
तैसे² मूरख ज्ञान, बूझै पै सूझै नहीं॥ 295 ॥

रहिमन बहरी बाज, गगन चढ़ै फिर क्यों तिरै।
पेट अधम के काज, फेरि आय³ बंधन परै॥ 296 ॥

रहिमन मोहि⁴ न सुहाय, अमी पिआवै⁵ मान बिनु⁶।
बरु⁷ विष देय⁸, बुलाय⁹ मान सहित मरिबो भलो॥ 297 ॥

बिंदु मो¹⁰ सिंधु समान को अचरज कासों कहै।
हेरनहार हेरान,¹¹ रहिमन अपुने¹² आप तें॥ 298 ॥

चूल्हा दीन्हो बार, नात रह्यो सो जरि गयो।
रहिमन उतरे पार, भार झोंकि सब भार में॥ 299 ॥

पाठान्तर— 1. भीगै (भीजै)। 2. सीजै। 3. आइ। 4. मोहिं। 5. पिआवत।

6. विन। 7. जो। 8. दे। 9. बुलाइ। 10. मो, मे। 11. हिरान। 12. आपुहि।

रहीम का एक दोहा और मिलता है :

घर डर गुरु डर बंस डर, डर लज्जा डर मान।

डर जेहि के जिह में बसै, तिन पाया रहिमान॥ 300 ॥

किन्तु यह प्रक्षिप्त प्रतीत होता है। इसमें 'रहिमान' रहीम की छाप न होकर ईश्वर के अर्थ में आया है।

नगर शोभा

आदि रूप की परम दुति¹, घट-घट रहा समाइ।

लघु मति ते मो मन रसन, अस्तुति कही न जाइ॥ 1॥

नैन तृप्ति कछु होतु² है, निरखि जगत की भाँति।

जाहि ताहि में पाइयै³, आदि रूप की काँति॥ 2॥

उत्तम जाती⁴ ब्राह्मनी⁵, देखत चित्त लुभाय।

परम पाप पल में हरत, परसत वाके पाय⁶॥ 3॥

परजापति परमेश्वरी⁷, गंगा रूप-समान।

जाके अंग-तरंग में, करत नैन अस्नान॥ 4॥

रूप-रंग-रति-राज में, खतरानी इतरान।

मानों रची बिरंचि पचि, कुसुम कनक में सान॥ 5॥

पारस पाहन की मनो, धरै पूतरी अंग।

क्यों न होई कंचल पहू⁸, जो बिलसै तिहि संग॥ 6॥

कबहुँ दिखावै जौहरिन⁹, हँसि हँसि मानिक लाल।

कबहुँ चख ते चै परै, टूटि मुकुत की माल॥ 7॥

जद्यपि¹⁰ नैननि ओट है, बिरह चोट बिन घाइ।

पिय उर पीरा ना करै, हीरा सी गड़ि जाइ॥ 8॥

कैथिनी कथन न पारई, प्रेम-कथा मुख बैन¹¹।

छाती ही पाती मनो, लिखै मैन की सैन॥ 9॥

बरुनि-बार लेखनि करै, मसि काजरि भरि लेइ¹²।

प्रेमाखर¹³ लिखि नैन ते, पिय बाँचन को देह¹⁴॥ 10॥

पाठान्तर— 1. दुति। 2. होत। 3. पाइयत। 4. जाति। 5. ब्राह्मणी, बराह्मनी। 6. पाँइ। 7. परमेश्वरी।

8. बहू। 9. जौहरनि। 10. जद्यपि। 11. बैन। 12. लेय। 13. प्रेमाक्षर। 14. देव।

चतुर चितेरिन¹ चित हरे चख खंजन के भाइ।
द्वै आधौ करि डारई, आधौ मुख दिखराइ॥ 11॥

पलक न टारै बदन तें, पलक न मारै नित्र।
नेकु² न चित तें ऊतरै, ज्यों कागद में चित्र॥ 12॥

सुरंग बरन बरइन बनी, नैन खवाये पान।
निसि दिन फेरै³ पान ज्यों, बिरही जन के प्रान॥ 13॥

पानी पीरी अति बनी, चन्दन खौरै गात।
परसत बीरी अधर की, पीरी कै है जात॥ 14॥

परम रूप कंचन बरन, सोभित नारि सुनारि।
मानों साँचे द्वारि कै, बिधिना गढ़ी सुनारि॥ 15॥

रहसनि बहसनि मन हरै, घेरि घेरि⁴ तन लेहि।
औरन को चित चोरि कै, आपुन चित न देहि॥ 16॥

बनिआइन⁵ बनि आइ कै, बैठि रूप की हाट।
पेम पेक तन हेरि कै, गरुए⁶ टारत⁷ बाट॥ 17॥

गरब तराजू करत चख, भौंह मोरि मुसक्यात।
डौंड़ी मारत बिरह की, चित चिन्ता घटि जात॥ 18॥

रँगरेजिन⁸ के संग में, उठत अनंग तरंग।
आनन ऊपर पाइयतु, सुरत अंत के रंग॥ 19॥

मारति नैन कुरंग तैं, मो मन मार मरोरि⁹।
आपुन अधर सुरंग तैं, कामिहिं काढ़ति बोरि¹⁰॥ 20॥

पाठान्तर— 1. चितैरनि। 2. नेक। 3. फेरें। 4. घोर-घोर। 5. बनियाइन।

6. गरुवे। 7. तारत। 8. रंगरेजनि। 9. मरोर। 10. बोर।

गति गरुर गजराज जिमि, गोरे बरन गँवारि¹।
जाके परसत पाइयै, धनवा की उनहारि²॥ 21॥

घरो भरो धरि सीस पर, बिरही देखि लजाइ।
कूक कंठ तैं बाँधि कै, लेजू ज्यों लै जाइ॥ 22॥

भाटा³ बरन सुकौंजरी⁴, बेचै सोवा साग।
निलजु भई खेलत सदा, गारी द दै फाग॥ 23॥

हरी भरी डलिया निरखि, जो कोई नियरात⁵
झूठे हू गारी सुनत, साँचेहू ललचात॥ 24॥

बनजारी झुमकत चलत, जेहरि पहिरै पाइ।
वाके जेहरि के सबद, बिरही जिय हर जाइ॥ 25॥

और बनज ब्यौपार को, भाव बिचारै कौन।
लोइन लोने होत हैं, देखत वाको लौन॥ 26॥

बर बाँके माटी भरे, कौरी बैस कुम्हारि⁶।
द्वै उलटे सरवा मनौ, दीसत कुच उनहारि⁷॥ 27॥

निरखि प्रान घट ज्यों रहै, क्यों मुख आवै बाक।
उर मानौं आबाद है, चित्त भ्रमै⁸ जिमि चाक॥ 28॥

बिरह अगिन⁹ निसि दिन धवै, उठै चित्त चिनगारि¹⁰।
बिरही जियहिं जराइ कै, करत लुहारि लुहारि¹¹॥ 29॥

राखत मो मन लोह-सम, पारि¹² प्रेम घन टोरि¹³।
बिरह अगिन में ताइकै, नैन नीर में बोरि¹⁴॥ 30॥

पाठान्तर— 1. गँवार। 2. उनहार। 3. भाँटा। 4. काजरी। 5. नियराति।

6. कुम्हार। 7. उनहार। 8. भ्रमै। 9. अग्नि। 10. चिनगार

11. लुहार-लुहार। 12. पार। 13. टौर। 14. बोर।

कबहूँ मुख रूखौ किये, कहै जीय की बात ।

वाको करुआ बचन सुनि, मुख मीठो है जात ॥ 42 ॥

पाटम्बर पटइन पहिरि,¹ सेंदुर भरे ललाट ।

बिरही नेकु न छाँड़ही, वा पटवा की हाट ॥ 43 ॥

रस रेसम बेंचत रहै, नैन सैन की सात ।

फूंदी पर को फोंदना, करै कोटि जिय घात ॥ 44 ॥

भटियारी अरु लच्छमी, दोऊ एकै घात ।

आवत बहु आदर करै, जात न पूछै बात ॥ 45 ॥

भटियारी उर मुँह करै, प्रेम-पथिक के² ठौर ।

घौस दिखावै और की, रात दिखावै और ॥ 46 ॥

करै गुमान कमाँगरी,³ भौंह कमान चढ़ाइ ।

पिय कर गहि जब खैंचई, फिरि कमान सी जाइ ॥ 47 ॥

जोगति है पिय रस परस, रहै रोस जिय टेक ।

सूधी करत कमान ज्यों, बिरह-अगिन में सेंक ॥ 48 ॥

हँसि हँसि मारै नैन-सर, बारत जिय बहु पीर ।

बेझा है उर जात है, तीरगरिन कै तीर ॥ 49 ॥

प्रान सरीकन साल दै, हेरि फेरि कर लेत ।

दुख संकट पै काढ़ि के, सुख सरेस में देत ॥ 50 ॥

छीपिन छापो अधर को, सुरँग पीक भरि लेइ ।

हँसि हँसि काम कलोल में, पिय मुख ऊपर देइ ॥ 51 ॥

मानों मूरति मैन की, धरै रंग सुरतंग ।

नैन रंगीले होतु हैं, देखत वाको रंग ॥ 52 ॥

सकल अंग सिकलीगरिन, करत प्रेम औसेर।
 करै बदन दर्पन मनो, नैन मुसकिला¹ फेरि॥53॥
 अंजन चख, चंदन बदन, सोभित सेंदुर मंग।
 अंगनि रंग सुरंग कै, काढ़ै अंग अनंग॥54॥
 करै न काहू की संका, सक्किन जोबन रूप।
 सदा सरम जल तें भरी, रहै चिबुक को² कूप॥55॥
 सजल नैन वाके निरखि, चलत प्रेम रस³ फूटि⁴।
 लोक लाज डर धाकते, जात मसक सी छूटि⁵॥56॥
 सुरंग बसन तन गाँधिनी, देखत दृग न अघाय।
 कुच माजू, कुटली अधर, मोचत चरन न आय॥57॥
 कामेश्वर नैननि धरै, करत प्रेम की केलि।
 नैन माहिं चोवा भरे, चिहुरन⁶ माहिं फुलेल॥58॥
 राज करत रजपूतनी⁷ देस रूप की दीप।
 कर घूँघट पट ओट कै, आवत पियहि समीप॥59॥
 सोभित मुख ऊपर धरै, सदा सुरत मैदान।
 छूटी लटैं बँदूकची, भोहैं रूप कमान॥60॥
 चतुर चपल कोमल बिमल, पग परसत सतराइ।
 रस ही रस बस कीजियै, तुरकिन तरकि न जाइ॥61॥
 सीस चूँदरी निरखि मन, परत प्रेम के जार।
 प्राण इजारो⁸ लेत है, वाको⁹ लाल इजार॥62॥
 जोगिन जोग न जानई, परै प्रेम रस माँहि।
 डोलत मुख ऊपर लिये, प्रेम जटा की छाँहि॥63॥

पाठान्तर— 1. मुसकिला। 2. कै। 3. सर। 4. फूट। 5. छूट। 6. छोरन

7. रजपूतई। 8. इजारै। 9. वाकी।

मुख पै बैरागी अलक, कुच सिंगो विष बैन।
मुदरा धारै अधर कै, मूँदि ध्यान सों नैन॥64॥

भाटिन भटकी प्रेम की, हटकी रहै न गेह।
जोबन पर लटकी फिरै, जोरत तरकि¹ सनेह॥65॥

मुक्त माल उर दोहरा, चौपाई मुख-लौन।
आपुन जोबन रूप को, अस्तुति करै न कौन॥66॥

लेत चुराये डोमनी, मोहन रूप सुजान।
गाइ गाइ कछु लेत है, बाँकी तिरछी तान॥67॥

नैकु न सूधे मुख रहै, झुकि हँसि मुरि मुसक्याइ।
उपपति की सुन जात है, सरबस लेइ रिझाइ॥68॥

चेरी माती² मैन की, नैन सैन के भाइ।
संक भरी जंभुवाइ कै, भुज उठाइ³ अँगराइ॥69॥

रंग रंग राती फिरै, चित्त न लावै गेह।
सब काहू तें कहि फिरै, आपुन सुरत सनेह॥70॥

बाँस चढ़ी नट-नंदनी, मन बाँधत लै बाँस।
नैन मैन की सैन तें, कटत कटाछन साँस॥71॥

अलबेली अद्भुत कला, सुध बुध लै बरजार।
चोरि चोरि⁴ मन लेत है, ठौर ठौर तन तोर॥72॥

बोलनि⁵ पै पिय मन विमल, चितवनि⁶ चित्त समाय।
निसि वासर हिंदू तुरक⁷ कौतुक देखि लुभाय॥73॥

लटकि लेइ कर दाइरौ, गावत अपनी ढाल।
सेत लाल छबि दीसियतु, ज्यों गुलाल की माल॥74॥

पाठान्तर— 1. तरक। 2. माँती। 3. उठाय। 4. चोर-चोर। 5. बोलन।

6. चितवति। 7. तुरकि।

कंचन से तन कंचनी, स्याम कंचुकी अंग।
 भाना भामै भोरही, रहै घटा के संग॥75॥
 नैननि भीतर नृत्य कै,¹ सैन देत सतराय।
 छबि तै चित छुड़ावही, नट के भाय² दिखाय॥76॥
 हरि गुन आवज केसवां, हिंसा बाजत काम।
 प्रथम विभासै गाइके, करत जीत संग्राम॥77॥
 प्रेम अहेरी साजि कै, बाँध परयो रस तान।
 मन मृग ज्यों रीझै नहीं, तोहि नैन के बान॥78॥
 मिलत अंग सब अंगना,³ प्रथम माँगि मन लेइ।
 घेरि घेरि⁴ उर राख ही, फेरि फेरि⁵ उर⁶ देइ॥79॥
 बहु पतंग जारत रहै, दीपक बारै देह।
 फिर तन-गेह न आवही, मन जु चैटुवा लेह॥80॥
 प्राँन-पूतरी पातुरी⁷, पातुर कला निधान।
 सुरत अंग चित चोरई, काय पाँच रसवान⁸॥81॥
 उपजावै रस में बिरस, बिरस माहिं रस नेम।
 जो कीजै बिपरीत रति, अतिहि बढ़ावत⁹ प्रेम॥82॥
 कहै आन की आन कछु, बिरह पीर तन ताप।
 औरै गाइ सुनावई, औरै कछू अलाप॥83॥
 जुँकिहारी जौवन लये,¹⁰ हाथ फिरै रस देत।
 आपुन मास चखाइ कै, रक्त आन को लेत॥84॥
 बिरही के उर में पड़ै, स्याम अलक की नोक।
 बिरह पीर पर लावई, रक्त पियासी जोंक॥85॥

पाठान्तर— 1. के। 2. भाइ। 3. माँगना। 4. घेर-घेर। 5. फेर-फेर। 6. नहि।

7. पातरी। 8. बाज। 9. बढ़ावे। 10. लिए।

विरह विथा खटकिन कहै, पलक न लावै रैन।
करत कोप बहु भाँति ही, धाइ मैन की सैन॥८६॥

विरह विथा कोई कहै, समुझै कछू न ताहि।
वाके जोबन रूप की, अकथ कथा कछु आहि॥८७॥

जाहि ताहि के उर गड़ै, कुंदिन बसन मलीन।
निस दिन वाके जाल में, परत फँसत मन मीन॥८८॥

जा वाके अँग संग में, धरै प्रीत की आस।
वाको लागै महमही,^१ बसन बसेधी बास॥८९॥

सबै अँग सबनीगरनि, दीसत मनन कलंक।
सेत बसन कीने मनो, साबुन लाइ मतंग॥९०॥

विरह बिथा मन की हरै, महा विमल है जाइ।
मन मलीन जो धोवई, वाको साबुन लाइ॥९१॥

थोरे थोरे कुच उठी, थोपिन की उर सींव।
रूप नगर में देत है, नैन मंदिर को नींव॥९२॥

करत बदन सुख सदन पै, घूँघट नितरन छाँह।
नैननि मूँदे पग धरै, भौंहन^२ आरै माँह॥९३॥

कुन्दन सी कुन्दीगरिन, कामिनि कठिन कठोर।
और न काहू की सुनै, अपने पिय के सोर॥९४॥

पगहि मौगरी सो रहै, पम बज्र बहु खाइ।
रँग रँग अँग अनंग के, करै बनाइ बनाइ॥९५॥

धुनियाइन धुनि रैन दिन, धरै सुरति की भाँति।
वाको राग न बूझही, कहा बजावै ताँति॥९६॥

काम पराक्रम जब करै, छुवत नरम हो जाइ।
 रोम रोम पिय के बदन, रूई सी लपटाइ॥ 97 ॥
 कोरिन कूर न जानई, पेम नेम के भाइ।
 बिरही वाके भौन में, ताना तनत बजाइ¹॥ 98 ॥
 बिरह भार पहुँचै नहीं, तानी बहै न पेम।
 जोबन पानी मुख धरै, खेंचे पिय के नैन॥ 99 ॥
 जोबन युत² पिय दबगरिन, कहत पीय के पास।
 मो मन और न भावई, छाँड़ि तिहारी बास॥ 100 ॥
 भरी कुपी कुच पीन की, कंचुक में न समाइ।
 नव सनेह असनेह भरि, नैन कुपा ढरि जाइ॥ 101 ॥
 घेरत नगर नगारचिन, बदन रूप तन साजि।
 घर घर वाके रूप को, रह्यौ नगारा³ बाजि॥ 102 ॥
 पहनै जो बिछुवा खरी, पित के संग अंगरात।
 रतिपति की नौबत मनो, बाजत आधी रात॥ 103 ॥
 मन दलमलै दलालिनी, रूप अंग के भाइ।
 नैन मटक मुख की चटक, गाहक रूप दिखाइ॥ 104 ॥
 लोक लाज कुलकानि तैं, नहीं सुनावति⁴ बोल।
 नैननि सैननि में करै, बिरही जन को मोल॥ 105 ॥
 निसि दिन रहै ठठेरिनी, साजे माजे गात।
 मुकता वाके रूप को, थारी पै ठहरात॥ 106 ॥
 आभूषण बसतर पहिरि, चितवति पिय मुख ओर।
 मानो गढ़े नितंब कुच, गड्डुवा ढार कठोर॥ 107 ॥

कागद से तन कागदिन, रहै प्रेम के पाइ।

रीझी भीजी मैन जल, कागद सी सिथलाइ ॥ 108 ॥

मानों कागद की गुड़ी, चढ़ी सु प्रेम अकास।

सुरत दूर चित खैंचई, आइ रहै उर पास ॥ 109 ॥

देखन के मिस मसिकरिन, पुनि भर मसि खिन देत।

चख टौना कछु डारई, सूझै स्याम न सेत ॥ 110 ॥

रूप जोति मुख पै धरै, छिनक मलीन न होत।

कच मानो काजर परै, मुख दीपक की जोति ॥ 111 ॥

बाजदारिनी बाज पिय, करै नहीं तन साज।

बिरह पीर तन यों रहै, जर झकिनी जिमि बाज ॥ 112 ॥

नैन अहेरी साजि कै, चित पंछी गहि लेत।

बिरही प्रान सचान¹ को, अधर न चाखन देत ॥ 113 ॥

जिलेदारिनी अति जलद, बिरह अगिन कै तेज।

नाक न मोरै सेज पर, अति हाजर महिमेज ॥ 114 ॥

औरन को घर सघन मन, चलै जु घूँघट माँह।

वाके रंग सुरंग को, जिलेदार पर छाँह ॥ 115 ॥

सोभा अंग भँगेरिनी, सोभित भाल गुलाल।

पता पीसि पानी करै, चखन दिखावै लाल ॥ 116 ॥

काहू अधर सुरंग धरि, प्रेम पियालो देत।

काहू की गति मति सुरत, हरुवैई हरि लेत ॥ 117 ॥

बाजीगरिन बजार में, खेलत बाजी प्रेम।

देखत वाको रस रसन, तजत नैन व्रत नेम ॥ 118 ॥

पीवत वाको प्रेम रस, जोई सो बस होइ।

एक खरे घूमत रहै, एक परे मत खोइ ॥ 119 ॥

बरवै-नायिका-भेद

इति-तत्त्वज्ञान-विद्या

॥ ४ ॥ नउपरी महु 'नउपरी' माल मल्ल
(मंगलाचरण)

॥ ५ ॥ 'नउपरी' महु 'नउपरी' माल मल्ल
(दोहा)

कवित कह्यो दोहा कह्यो, तुलै न छप्पय छंद ।

बिरच्यो यहै विचार कै, यह बरवै^१ रस कंद^२ ॥ १ ॥

॥ ० ॥ नकि लम होत 'नउपरी' माल मल्ल
(मंगलाचरण)

बंदौ देवि सरदवा, पद कर जोरि ।

बरनत काव्य बरैवा, लगे न खोरि ॥ २ ॥

॥ १ ॥ 'नउपरी' महु 'नउपरी' माल मल्ल
(उत्तमा)

लखि अपराध पियरवा, नहिं रिस कीन ।

विहँसत चनन^३ चउकिया, बैठक दीन ॥ ३ ॥

॥ २ ॥ 'नउपरी' महु 'नउपरी' माल मल्ल
(मध्यमा)

बिनु गुन पिय-उर, हरवा, उपट्यो^४ हेरि ।

चुप है चित्र पुतरिया, रहि मुख फेरि ॥ ४ ॥

॥ ३ ॥ 'नउपरी' महु 'नउपरी' माल मल्ल
(अधमा)

बेरिहि बेर गुमनवा, जनि करु नारि ।

मानिक औ गजमुकुता^५, जो लागि बारि ॥ ५ ॥

॥ ४ ॥ 'नउपरी' महु 'नउपरी' माल मल्ल
(स्वकीया)

रहत नयन के कोरवा, चितवनि छाय ।

चलत^६ न पग-पजनिया, मग अहटाय ॥ ६ ॥

॥ ५ ॥ 'नउपरी' महु 'नउपरी' माल मल्ल
(मुग्धा)

लहरत लहर लहरिया, लहर बहार ।

मोतिन जरी किनरिया, बिथुरे बार ॥ ७ ॥

॥ ६ ॥ 'नउपरी' महु 'नउपरी' माल मल्ल
(मुग्धा)

पाठान्तर— १. बरवा । २. छंद । ३. चंदन । ४. उपट्यो । ५. मोनुष औ गज मोतियाँ । ६. वजत । ७. ठहराय ।

लागे¹ आन नवेलियहि, मनसिज बान।
उसकन लाग² उरोजवा³ दृग तिरछान॥ 8 ॥

(अज्ञातयौवना)

कवन⁴ रोग दुहुँ⁵ छतिया, उपजे⁶ आय।
दुखि दुखि उठै करेजवा, लगि जनु जाय⁷॥ 9 ॥

(ज्ञातयौवना)

औचक आइ जोबनवाँ, मोहि दुख दीन।
छुटिगो संग गोइअवाँ नहि भल कीन॥ 10 ॥

(नवोद्गा)

पहिरति⁸ चूनि चुनरिया, भूषन भाव।
नैननि देत कजरवा, फूलनि चाव॥ 11 ॥

(विश्रब्ध नवोद्गा)

जंघन जोरत गोरिया, करत कठोर।
छुअन न पावै⁹ पियवा, कहँ कुच-कोर॥ 12 ॥

(मध्यमा)

ढीलि आँख जल अँचवत, तरुनि सुभाय।
धरि खसिकाइ घइलना, मुरि मुसुकाय¹⁰॥ 13 ॥

(प्रौढ़ रतिप्रीता)

भोरहि बोलि कोइलिया, बढवति ताप।
घरी एक घरि अलवा,¹¹ रह चुपचाप॥ 14 ॥

(परकीया)

सुनि सुनि¹² कान मुरलिया, रागन भेद।
गैल न छाँड़त¹³ गोरिया, गनत¹⁴ न खेद॥ 15 ॥

पाठान्तर— 1. लागेउ। 2. लागु। 3. करेजवा, उरुजवा। 4. कौन। 5. है, हुई। 6. उकस्यो। 7. लाय।

8. पहिरत। 9. पाव।

10. निसि दिन चाहत चाहन श्री ब्रजराज।

लाज जोरावरि है बसि, करत अकाज।

11. घरी एक घरि अलिया, घरि घरि एक घरिअवा,

घरी एक भरि अँखिया।

12. धुनि। 13. छाँड़ति। 14. गनति।

(ऊढ़ा)

निसु दिन सासु ननदिया, मुहि घर हेर¹।
सुनन न देत मुरलिया मधुरी² टेर ॥ 16 ॥

(अनूढ़ा)

मोहि बर जोग कन्हैया लागौं पाय।
तुहु कुल पूज देवतवा,³ होहु सहाय ॥ 17 ॥

(भूत सुरति-संगोपना)

चूनत फूल गुलबवा डार कटील।
टुटिगा बंद अँगियवा, फटि पट नील ॥ 18 ॥

आयेसि कवनेउ ओरवा⁴, सुगना सार।
परिगा दाग अधरवा, चोंच चोटर ॥ 19 ॥

(वर्तमान सुरति-गोपना)

मं पठयेउ जिहि कमवाँ, आयेस साध।
छुटिगा सीस को जुरवा, कसि के बाँध ॥ 20 ॥

मुहि तुहि हरबर आवत, भा पथ खेद।
रहि रहि लेत उससवा, बहत प्रसेद ॥ 21 ॥

(भविष्य सुरति-गोपनान)

होइ कत आइ बदरिया, बरखहि पाथ।
जैहौं घन अमरैया, सुगना⁵ साथ ॥ 22 ॥

जैहौं चुनन कुसुमियाँ, खेत बड़ि दूर।
नौआ⁶ केर छोहरिया, मुहि सँग कूर ॥ 23 ॥

(क्रिया-विदग्धा)

बाहिर लैके दियवा, बारन जाय।
सासु ननद ढिग पहुँचत, देत बुझाय⁷ ॥ 24 ॥

पाठान्तर— 1. घेर मोहि घर घेरु। 2. नाधुन। 3. तुमको पुज देवतवा, तुमको पुजऊँ। 4. अब नहिं तोहिं पढ़ावों। 5. संग न। 6. तोरेसि। 7. देति।

(वचन-विदग्धा)

तनिक सी^१ नाक नथुनिया, मित हित नीक ।
॥ २५ ॥ कहति नाक पहिरावहु, चित दै सीक ॥ २५ ॥

(लक्षिता)

आजु नैन के कजरा^२, और भाँत ।
॥ २६ ॥ नागर नेह नवेलिया, सुदिने^३ जात ॥ २६ ॥

(अन्य-सुरति-दुःखिता)

बालम अस मन मिलियउँ, जस पय पानि ।
॥ २७ ॥ हँसिनि भइल सवतिया, लइ बिलगानि ॥ २७ ॥

(संभोग-दुःखिता)

मैं पठ्यउ जिहि कमवाँ, आयसि साध ।
छुटिगो सीस को जुरवा, कसि के बाँधि ॥ २८ ॥

मुहि तुहि हरबत आदत, भव पथ खेद ।
॥ २९ ॥ रहि रहि लेत उससवा, बहत प्रसेद ॥ २९ ॥

(प्रेम-गर्विता)

आपुहि देत जवकवा^४, गूँदत हार ।
चुनि पहिराव चुनरिया, प्रानअधार ॥ ३० ॥

अवरन पाय जवकवा, नाइन दीन ।
॥ ३१ ॥ मुहि पग आगर गोरिया, आनन कीन^५ ॥ ३१ ॥

(रूप-गर्विता)

खीन मलिन बिखभैया, औगुन तीन ।
॥ ३२ ॥ मोहि कहत विधुबदनी, पिय मतिहीन^६ ॥ ३२ ॥

दातुल भयसि सुगरुवा^७, निरस पखान ।
॥ ३३ ॥ यह मधु भरल अधरवा, करसि गुमान ॥ ३३ ॥

पाठान्तर—१. थोरसि । २. कोरवा । ३. मूदि न । ४. कजरवा । ५. तुम्हें अगोरत गोरिया, न्हान न कीन ।
६. पिय कह चंद बदनिया, हियमति हीन । ७. रातुल भयसि मुगउवा ।

(प्रथम अनुशयना, भावी-संकेतनष्टा)
 ॥ ३४ ॥ धीरज धरु किन गोरिया करि अनुसाग।
 जात जहाँ पिय देसवा, घन^१ बन^२ बाग ॥ ३४ ॥
 जनि मरु रोय दुलहिया, कर मन ऊन।
 ॥ ३५ ॥ सघन कुज ससुररिया, औ घर सून ॥ ३५ ॥

(द्वितीय अनुशयना, संकेत-विघट्टना)
 जमुना तीर तरुनिअहि^३ लखि भो सूल।
 ॥ ३६ ॥ झरिगो रूख बेइलिया, फुलत न फूल ॥ ३६ ॥
 ग्रीष्म दवत दवरिया, कुज कुटीर।
 ॥ ३७ ॥ तिमि तिमि तकत तरुनिअहिं, बाढी पीर^४ ॥ ३७ ॥

(तृतीय अनुशयना, रमणगमना)
 मितवा करत बँसुरिया, सुमन सपात।
 ॥ ३८ ॥ फिरि फिरि तकत तरुनिया, मन पछतात ॥ ३८ ॥
 मित उत तें फिरि आयेउ, देखु न राम।
 ॥ ३९ ॥ मैं न गई अमरैया, लहेउ न काम ॥ ३९ ॥

(मुदिता)
 नेवते गइल ननदिया, मैके सासु।
 ॥ ४० ॥ दुलहिनि तोरि खबरिया, आवै आँसु ॥ ४० ॥
 जैहौं काल नेवतवा, भा^५ दुःख दून।
 ॥ ४१ ॥ गाँव करसि रखवरिया, सब घर सून ॥ ४१ ॥

(कुलटा)
 जस मद मातल हथिया, हुमकत जात^६।
 चितवत जात तरुनिया, मन मुसकात^७ ॥ ४२ ॥

पाठान्तर— १. घन। २. बर। ३. तरुनिया। ४. पीत। ५. भव। ६. जाया। ७. मुहु मुसकाय।

चितवत ऊँच अटरिया, दहिने बाम।
लाखन लखत बिछियवा, लखी¹ सकाम ॥ 43 ॥

(सामान्या गणिका)

लखि लखि धनिक नयकवा² बनवत भेष।
रहि गइ हेरि अरसिया, कजरा रेख³ ॥ 44 ॥

(मुग्धा प्रोषितपतिका)

कासो कहौ सँदेसवा, पिय परदेसु।
लागेहु चइत⁴ न फले तेहि बन⁵ टेंसु ॥ 45 ॥

(मध्या प्रोषितपतिका)

का तुम जुगुल तिरियवा, झगरति आय⁶।
पिय बिन मनहुँ अटरिया,⁷ मुहि न सुहाय⁸ ॥ 46 ॥

(प्रौढ़ा प्रोषितपतिका)

तैं अब जासि⁹ बेइलिया, बरु¹⁰ जरि मूल।
बिनु पिय सूल करेजवा, लखि तुअ फूल ॥ 47 ॥

या झर में घर घर में, मदन हिलोर।
पिय नहिं अपने कर में, करमै खोर ॥ 48 ॥

(मुग्धा खंडिता)

सखि सिख मान¹¹ नवेलिया, कीन्हेसि मान।
पिय बिन¹² कोपभवनवा, ठानेसि ठान ॥ 49 ॥

सीस नवाय नवेलिया, निचवइ जोय।
छिति खबि¹³, छोर छिगुरिया, सुसुकति रोय¹⁴ ॥ 50 ॥

पाठान्तर— 1. लखत बिदेसिया है। 2. धनिजवा। 3. नेख। 4. रातुल है।

5. उहि बिन। 6. मंजु मलतिया झलरति जाय। 7. हुकरैया। 8. सुहाति, सोहाय। 9. जाइ।
10. बरि। 11. सीखि। 12. लखि। 13. खनि। 14. रोइ।

(नव्या खंडिता)

गिरि गइ पीय पगरिया,¹ आलस पाइ।
पवढ़हु जाइ बरोठवा, सेज डसाइ॥51॥

पोछहु अधर² कजरवा, जावक भाल।
उपजेउ³ पीतम छतिया, बिनु गुन माल॥52॥

(प्रौढ़ा खंडिता)

पिय आवत अँगनैया, उठि कै लीन।
साथे⁴ चतुर तिरियवा, बैठक दीन॥53॥

पवढ़हु पीय पलँगिया, मीजहुँ पाय।
रैनि जगे कर निंदिया, सब मिटि जाय॥54॥

(परकीया खंडिता)

जेहि लगि सजन सनेहिया,⁵ छुटि घर बार।
आपन हित परिवरवा,⁶ सोच परार॥55॥

(गणिका खंडिता)

मितवा ओठ कजरवा, जावक भाल।
लियेसि काढ़ि बइरिनिया,⁷ तकि मनिमाल॥56॥

(मुग्धा कलहांतरिता)

आयेहु अबहिं गवनवा, जुरुते मान।
अब रस लागिहि⁸ गोरिअहि, मन पछतान॥57॥

(भग्धा कलहांतरिता)

मैं मतिमंद तिरियवा, परिलिउँ भोर।
तेहि नहिं कंत मनउलेउं⁹, तेहि कछु खोर॥58॥

पाठान्तर— 1. ठकि गौ पीय पलँगिया। 2. अनख। 3. उपट्यौ। 4. बिहंस
5. सनेइया। 6. अपने हित पियरवा। 7. बरिइनियाँ। 8. ला।
9. मनवलेउं।

(प्रौढ़ा कलहांतरिता)

थकि गा करि मनुहरिया,¹ फिरि गा² पीय।
मैं उठि³ तुरति न लायेउँ, हिमकर हीया। 59 ॥

(परकीया कलहांतरिता)

जेहि लागि कीन बिरोधवा, ननुद जिठानि।
रखिउँ न लाइ⁴ करेजवा, तेहि हित जानि ॥ 60 ॥

(गणिका कलहांतरिता)

जिहि दीन्हेउ बहु बिरिया, मुहि मनिमाल।
तिहि ते रूठेउँ सखिया, फिरि गे⁵ लाल ॥ 61 ॥

(मुग्धा विप्रलब्धा)

लखे⁶ न कंत सहेटवा, फिरि दुबराय⁷।
धनिया कमलबदनिया, गइ कुम्हिलाय ॥ 62 ॥

(मध्या विप्रलब्धा)

देखि न केलि-भवनवा, नंदकुमार।
लै लै ऊँच⁸ उससवा, भइ बिकरार ॥ 63 ॥

(प्रौढ़ा विप्रलब्धा)

देखि न कंत सहेटवा, भा⁹ दुख पूर।
भौ तन नैन कजरवा, होय¹⁰ गा¹¹ झूर ॥ 64 ॥

(परकीया विप्रलब्धा)

बैरिन भा¹² अभिसरवा, अति दुख दानि।
प्रातउ¹³ मिलेउ न मितवा, भइ पछितानि¹⁴ ॥ 65 ॥

(गणिका विप्रलब्धा)

करिकै सोरह सिंगरवा, अतर लगाइ¹⁵।
मिलेउ न लाल सहेटवा, फिरि पछिताइ¹⁶ ॥ 66 ॥

पाठान्तर— 1. मन का हरिया, बनहरिया। 2. गी। 3. सठि। 4. लाय। 5. गए। 6. मिलेउ। 7. ललेउ डेराइ। 8. ऊचि। 9. भो। 10. भै, है। 11. गे। 12. भो, महीं। 13. तापर। 14. पछितानि। 15. लगाय। 16. पछिताइ।

(मुग्धा उत्कंठिता)

भा¹ जुग जाम जमिनिया, पिय नहिं आय।
राखेउ कवन सवतिया, रहि बिलमाय॥ 67 ॥

(मध्या उत्कंठिता)

जोहत तीय अँगनवा,² पिय की बाट।
वेचेउ चतुर तिरियवा, केहि के हाट॥ 68 ॥

(प्रौढ़ा उत्कंठिता)

पिय पथ हेरत गोरिया, भा³ भिनसार⁴।
चलहु न करिहि तिरियवा, तुअ⁵ इतबार॥ 69 ॥

(परकीया उत्कंठिता)

उठि उठि जात खिरिकिया, जोहत⁶ बाट।
कतहुँ न आवत मितवा, सुनि सुनि⁷ खाट॥ 70 ॥

(गणिका उत्कंठिता)

कठिन नींद भिनसरवा, आलस पाइ⁸।
धन दै मूरख मितवा, रहल लोभाइ⁹॥ 71 ॥

(मुग्धा वासकसज्जा)

हरुए गावन नबेलिया, दीठि बचाइ।
पौढ़ी जाइ पलँगिया, सेज बिछाइ॥ 72 ॥

(मध्या वासकसज्जा)

सुभग¹⁰ बिछाइ पलँगिया, अंग सिंगार।
चितवत¹¹ चौंकि तरुनिया, दै दृग द्वार¹²॥ 73 ॥

(प्रौढ़ा वासकसज्जा)

हँसि हँसि¹³ हेरि अरसिया, सहज सिंगार।
उतरत चढ़त नबेलिया, तिय कै बार॥ 74 ॥

पाठान्तर— 1. गोभो। 2. अवनवा। 3. भो। 4. भिनसार। 5. तुव। 6. जोहति।

7. सूनी। 8. पाय। 9. लोभाय। 10. सेज। 11. चितवति।

12. दहु कै बार। 13. हरि।

(परकीया वासकसज्जा)

सोवत सबं गुरु लोगवा, जानेउ बाल।
दीन्हेसि खोलि खिरकिया, उठि कै हाल ॥ 75 ॥

(सामान्या वासकसज्जा)

कीन्हेसि सबै सिंगरवा, चातुर बाल।
ऐहै प्रानपिअरवा,¹ लै मनिमाल ॥ 76 ॥

(मुग्धा स्वाधीनपतिका)

आपुहि देत जवकवा, गहि गहि पाय²।
आपु देत मोहि पियवा, पान खवाय ॥ 77 ॥

(मध्या स्वाधीनपतिका)

प्रीतम करत पियरवा, कहल न जात³।
रहत गढ़ावत सोनवा, इहै⁴ सिरात ॥ 78 ॥

(प्रौढ़ा स्वाधीनपतिका)

मैं अरु मोर पियरवा, जस जल मीन।
बिछुरत तजत परनवा,⁵ रहत अधीन ॥ 79 ॥

(परकीया स्वाधीनपतिका)

भो⁶ जुग नैन चकोरवा, पिय मुख चंद।
जानत है तिय अपुनै, मोहि सुखकंद ॥ 80 ॥

(सामान्या स्वाधीनपतिका)

लै हीरन के हरवा, मानिकमाल⁷।
मोहि रहत पहिरावत, बस है लाल ॥ 81 ॥

(मुग्धा अभिसारिका)

चलीं लिवाइ नवेलिअहि, सखि सब संग।
जस हुलसत गा⁸ गोदवा, मत्त मत्तंग ॥ 82 ॥

पाठान्तर— 1. पियरवा। 2. पाँय। 3. जाति। 4. यहै। 5. परनवाँ। 6. भौ। 7. मोलिक। 8. गो।

(मध्या अभिसारिका)

पहिरे लाल अछुअवा, तिय-गज पाय।
चढ़े नेह-हथिअवहा, हुलसत जाय॥८३॥

(प्रौढ़ा अभिसारिका)

चली रैन^१ अँधिअरिया,^२ साहस गाढ़ि।
पायन केर^३ कँगनिया,^४ डारेसि^५ काढ़ि॥८४॥

(परकीया कृष्णाभिसारिका)

नील मनिन के हरवा, नील सिंगार
किए रैन^६ अँधिअरिया^७, धनि अभिसार॥८५॥

(शुक्लाभिसारिका)

सेत कुसुम कै हरवा^८ भूषन सेत।
चली रैन उँजिअरिया,^९ पिय के हेत॥८६॥

(दिवाभिसारिका)

पहिरि बसन जरतरिया,^{१०} पिय के होत।
चली जेठ दुपहरिया, मिलि रवि जोत॥८७॥

(गणिका अभिसारिका)

धन हित कीन्ह सिंगरवा, चातुर बाल।
चली संग लै चेरिया, जहवाँ लाल॥८८॥

(मुग्धा प्रवत्स्यत्पतिका)

परिगा^{११} कानन सखिया पिय कै गौन।
बैठी कनक पलँगिया, है^{१२} कै मौन॥८९॥

(मध्या प्रवत्स्यत्पतिका)

सुठि सुकुमार तरुयिका, सुनि पिय-गौन
लाजनि पौढ़ि ओबरिया, है कै मौन॥९०॥

पाठान्तर— १. रइनि, २. अँधियरिया। ३. फेरि। ४. कँगनिआ। ५. डारेस। ६. रइनि। ७. अँधिअरिया।
८. हरुवा। ९. उजिअरिया। १०. जरतरिया। ११. परिगो। १२. होइ।

(प्रौढ़ा प्रवत्स्यत्पतिका)

बन धन फूलहि टेसुआ, बगिअनि बेलि।

चलेउ बिदेस पियरवा¹ फगुआ खेलि॥११॥

(परकीया प्रवत्स्यत्पतिका)

मितवा चलेउ बिदेसवा, मन अनुरागि।

पिय² की सुरत गगरिया, रहि मग लागि॥१२॥

(गणिका प्रवत्स्यत्पतिका)

पीतम इक सुमिरिनिया, मुहि³ देइ जाहु।

जेहि जप तोर बिरहवा, करब⁴ निबाहु॥१३॥

(मुग्धा आगतपतिका)

बहुत दिवस पर पियवा, आयेउ⁵ आज।

पुलकित नवल दुलहिवा,⁶ कर⁷ गृह-काज⁸॥१४॥

(मध्या आगतपतिका)

पियवा आय⁹ दुअरवा, उठि किन देख¹⁰।

दुलभ पाय¹¹ बिदेसिया, मुद अवेख¹²॥१५॥

(प्रौढ़ा आगतपतिका)

आवत सुनत तिरियवा, उठि हरषाइ।

तलफत मनहुँ मछरिया, जनु जल पाइ¹³॥१६॥

(परकीया आगतपतिका)

पूछन¹⁴ चली खबरिया, मितवा तीर।

हरखित अतिहि तिरियवा पहिरत चीर¹⁵॥१७॥

पाठान्तर— 1. तब पिय चलेउ विदेसवा। 2. तिय। 3. मोहि। 4. करौं।

5. आएहु। 6. बघुइआ। 7. करु। 8. काजु। 9. पौरि। 10. देखु।

11. पाइ। 12. जिय के लेखु।

13. पावन प्रान-पियरवा, हेरेउ आइ।

तलफत मीन तिरिअवा, जिमि जल पाइ॥

14. पूछत।

15. नेहर खोज तिरिअवा, पहिरि सुचीर॥

(गणिका आगतपतिका)

तौ¹ लगि मिटिहि² न मितवा, तन की पीर।
जौ लगि पहिर³ न हरवा, जटित सुहीर॥ 98 ॥

(नायक)

सुंदर चतुर धनिकवा, जाति के⁴ ऊँच।
केलि-कला परबिनवा, सील समूच॥ 99 ॥

(नायक भेद)

पति, उपपति, वैसिकवा, त्रिबिध बखान।

(पति लक्षण)

बिधि सो ब्याह्यो गुरु जन पति सो जानि॥ 100 ॥

(पति)

लैकै सुघर खुरुपिया, पिय के साथ।
छड़वै एक छतरिया, बरखत पाथ॥ 101 ॥

(अनुकूल)

करत न हिय⁵ अपरधवा, सपनेहुँ पीय⁶।
मान करन की बेरिया⁷, रहि गइ हीय⁸॥ 102 ॥

(दक्षिण)

सौतिन⁹ करहि¹⁰ निहोरवा, हम कहँ देहु।
चुन चुन चंपक चुरिया¹¹, उच से¹² लेहु॥ 103 ॥

(शठ)

छूटेउ लाज डगरिया,¹³ औ कुल कानि।
करत जात¹⁴ अपरधवा, परि गइ¹⁵ बानि॥ 104 ॥

पाठान्तर— 1. तब। 2. मिटै। 3. पहिरि। 4. जातिउ। 5. नहीं। 6. पीव।

7. सधवा। 8. जीव। 9. सब मिलि। 10. करै। 11. टैंड़िआ। 12. उचड़ सो।

13. गरिअवा। 14. रोज। 15. परिगो।

(घृष्ट)

जहवाँ¹ जात² रइनियाँ³ तहवाँ जाहु।
जोरि नयन निरलजवा, कत मुसुकाहु ॥ 105 ॥

(उपपत्ति)

झाँकि झरोखन गोरिया, अँखियन जोर⁴।
फिरि चितवन⁵ चित मितवा, करत निहोर⁶ ॥ 106 ॥

(वचन-चतुर)

सघन कुंज अमरैया⁷, सीतल छाँह⁸।
झगरत⁹ आय कोइलिया, पुनि उड़ि जाह¹⁰ ॥ 107 ॥

(क्रिया-चतुर)

खेलत जानेसि टोलवा,¹¹ नंदकिसोर।
हुइ वृषभानु कुँअरिया, होगा चोर ॥ 108 ॥

(वैशिक)

जनु अति नील अलकिया बनसी लाय¹²।
भो मन बारबधुअबा, तिय बझाय ॥ 109 ॥

(प्रोषित नायक)

करबौं¹³ ऊँच अटरिया, तिय सँग केलि।
कबधौं, पहिरि गजरवा, हार चमेलि ॥ 110 ॥

(मानी)

अब भरि जनम सहेलिया, तकब न ओहि।
ऐँठलि गइ अभिमनिया, तजि कै मोहि ॥ 111 ॥

(स्वप्नदर्शन)

पीतम मिलेउ¹⁴ सपनवाँ भइ¹⁵ सुख-खानि।
आनि जगाएसि¹⁶ चेरिया, भइ¹⁷ दुखदानि ॥ 112 ॥

पाठान्तर— 1. जहँ। 2. जागेउ। 3. रैनियाँ। 4. जोरि। 5. चितवति।

6. निहोरि। 7. अमरइया। 8. छाँहि। 9. झगरति। 10. जाहिं।

11. रोलिया। 12. लटकी नील जुलफिया बनसी भाइ। 13. करि कै।

14. मिले। 15. भो। 16. जगायेसि। 17. भो।

(चित्र दर्शन)

पिय मूरति चितसरिया, चितवन¹ बाल।
सुमिरत² अवधि बसरवा, जपि जपि माल ॥ 113 ॥

(श्रवण)

आयेउ मीत बिदेसिया, सुन सखि तोर।
उठि किन करसि सिंगरवा, सुनि सिख मोर ॥ 114 ॥

(साक्षात् दर्शन)

बिरहिनि अवर³ बिदेसिया, भै इक ठोर।
पिय-मुख तकत तिरियवा, चंद चकोर ॥ 115 ॥

(मंडन)

सखियन कीन्ह सिंगरवा रचि बहु भाँति।
हेरति नैन अरसिया, मुरि⁴ मुसुकाति ॥ 116 ॥

(शिक्षा)

छाकहु बैठ दुअरिया⁵ मीजहु⁶ पाय⁷।
पिय तन पेखि गरमिया, बिजन डोलाय⁸ ॥ 117 ॥

(उपालंभ)

चुप होइ⁹ रहेउ¹⁰ सँदेसवा, सुनि मुसुकाय।
पिय निज कर बिछवनवा, दीन्ह उठाय¹¹ ॥ 118 ॥

(परिहास)

बिहँसति भौहँ चढ़ाये, धनुष मनीय¹²।
लावत उर अबलनिया¹³, उठि उठि पीय¹⁴ ॥ 119 ॥

पाठान्तर— 1. देखत, चितवत, बितवत। 2. सुमिरन। 3. और। 4. मुँह। 5. यके बड़ि गोड़बरिआ।
6. मीझु। 7. पाउ। 8. डुलाउ। 9. है। 10. रहे। 11. हाथ बिरवना, दीन्ह पठाय।
12. मनोज। 13. उपटनवाँ। 14. ऐँठि उरोज।

(गोप्य)

॥ ८१॥ "मम" "मम" "मम" "मम" "मम" "मम" ॥ ८१॥

(गोप्य)

॥ ८२॥ "मम" "मम" "मम" "मम" "मम" "मम" ॥ ८२॥

(गोप्य)

॥ ८३॥ "मम" "मम" "मम" "मम" "मम" "मम" ॥ ८३॥

(गोप्य)

॥ ८४॥ "मम" "मम" "मम" "मम" "मम" "मम" ॥ ८४॥

(गोप्य)

॥ ८५॥ "मम" "मम" "मम" "मम" "मम" "मम" ॥ ८५॥

(गोप्य)

॥ ८६॥ "मम" "मम" "मम" "मम" "मम" "मम" ॥ ८६॥

(गोप्य)

॥ ८७॥ "मम" "मम" "मम" "मम" "मम" "मम" ॥ ८७॥

(गोप्य)

॥ ८८॥ "मम" "मम" "मम" "मम" "मम" "मम" ॥ ८८॥

॥ ८९॥ "मम" "मम" "मम" "मम" "मम" "मम" ॥ ८९॥

॥ ९०॥ "मम" "मम" "मम" "मम" "मम" "मम" ॥ ९०॥

बन्दी विषय-विनाश, अवि-विधि-वि।
 निर्णय बुद्धि-अपमान, तितु तति वीतः॥१॥
 सुमिती मय हृद करके, मय-मयः।
 न वृत्त-मय-मय, न वृत्त-मयः॥२॥
 मय-मय-मय-मय, मय-मय।
 मय-मय-मय-मय, मय-मय॥३॥
 मय-मय-मय-मय, मय-मय।
 मय-मय-मय-मय, मय-मय॥४॥
 मय-मय-मय-मय, मय-मय।
 मय-मय-मय-मय, मय-मय॥५॥
 मय-मय-मय-मय, मय-मय॥६॥
 मय-मय-मय-मय, मय-मय॥७॥
 मय-मय-मय-मय, मय-मय॥८॥
 मय-मय-मय-मय, मय-मय॥९॥
 मय-मय-मय-मय, मय-मय॥१०॥
 मय-मय-मय-मय, मय-मय॥११॥

बरवै (भक्तिपरक)

(क्यापलीम) विष्णु

बन्दौ¹ विघन-बिनासन, ऋधि-सिधि-ईस ।
 निर्मल बुद्धि-प्रकासन, सिसु ससि सीस ॥ 1 ॥
 सुमिरौ² मन दृढ़ करकै, नन्दकुमार ।
 जे वृषभान-कुँवरि कै³ प्रान-अधार ॥ 2 ॥
 भजहु चराचर-नायक, सूरज देव ।
 दीन जनन सुखदायक, तारन एव⁴ ॥ 3 ॥
 ध्यावौ⁵ सोच-बिमोचन, गिरिजा-ईस ।
 नागर भरन त्रिलोचन, सुरसरि-सीस ॥ 4 ॥
 ध्यावौ⁶ विपद⁷-विदारन, सुअन-समीर ।
 खल दानव वनजारन प्रिय रघुवीर ॥ 5 ॥
 पुन पुन⁸ बन्दौ⁹ गुरु के, पद जलजात ।
 जिहि प्रताप¹⁰ तैं मन के तिमिर बिलात¹¹ ॥ 6 ॥
 करत घुमड़ि घन-घुरवा, मुरवा रोर ।
 लगि रह विकसि अँकुरवा, नन्दकिसोर ॥ 7 ॥
 बरसत मेघ चहुँ दिसि, मूसरधार ।
 सावन आवन कीजत, नन्दकुमार ॥ 8 ॥
 अजौ न आये सुधि कै, सखि घनश्याम ।
 राख लिये कहूँ बसि कै, काहू बाम ॥ 9 ॥
 कबलौँ रहिहै सजनी, मन में धीर ।
 सावन हूँ नहिँ आवन, कित बलबीर ॥ 10 ॥
 घन घुमड़े चहुँ ओरन, चमकत बीज ।
 पिय प्यारी मिलि झूलत, सावन तीज ॥ 11 ॥

पाठान्तर— 1. बन्दहु, बन्दहुँ । 2. सुमिरहु 3. कुमारिके । 4. त्यारन ऐव, त्यारन एव । 5. ध्यावहु, ध्यावहुँ ।
 6. ध्यावहुँ । 7. विपति । 8. पुनि-पुनि । 9. बन्दहुँ । 10. प्रसाद । 11. नसात ।

पीव पीव कहि चातक, सठ अधरात ।
 करत बिरहिनी तिय के, हिय उतपात ॥ 12 ॥
 सावन आवन कहिगे, स्याम सुजान ।
 अजहुँ न आये सजनी, तरफत प्रान ॥ 13 ॥
 मोहन लेउ मया करि, मो सुधि आय ।
 तुम बिन मीत अहर-निसि, तरफत जाय ॥ 14 ॥
 बढ़त जात चित दिन-दिन, चौगुन चाव ।
 मनमोहन तैं मिलवौ राखि क दाँव ॥ 15 ॥
 मनमोहन बिन देखे, दिन न सुहाय ।
 गुन न भूलिहौं सजनी, तनक मिलाय ॥ 16 ॥
 उमड़ि-उमड़ि घन घुमड़े दिसि बिदिसान ।
 सावन दिन मनभावन, करत पयान ॥ 17 ॥
 समुझत सुमुखि सयानी, बादर झूम ।
 बिरहिन के हिय भभकत तिनकी धूम ॥ 18 ॥
 उलहे नये अँकुरवा, बिन बलबीर ।
 मानहु मदन महिप के बिन पर तीर ॥ 19 ॥
 सुगमहि गातहि का रन जारत देह ।
 अगम महा अति पान सुघर सनेह ॥ 20 ॥
 मनमोहन तुव मूरति, बेरिझवार ।
 बिन पयान मुहि बनिहै, सकल विचार ॥ 21 ॥
 झूमि झूमि चहुँ ओरन, बरसत मेह ।
 त्यों त्यों पिय बिन सजनी, तरफत देह ॥ 22 ॥
 झूँठी झूँठी सौहैं हरि नित खात ।
 फिर जब मिलत मरु के, उतर बतात ॥ 23 ॥
 डोलत त्रिबिध मरुतवा, सुखद सुदार ।
 हरि बिन लागत सजनी, जिमि तरवार ॥ 24 ॥
 कहियो पथिक सँदेसवा, गहि कै पाय ।
 मोहन तुम बिन तनकहु, रह्यौ न जाय ॥ 25 ॥
 जब ते आयौ सजनी, मास असाढ़ ।
 जानी सखि वा तिय के, हिय की गाढ़ ॥ 26 ॥

मनमोहन बिन तिय के, हिय दुख बाढ़।
 आयौ¹ नन्द-ढोठनवा, लगत असाढ़॥ 27 ॥
 वेद पुरान बखानत, अधम-उधार।
 केहि कारन करुनानिधि, करत विचार॥ 28 ॥
 लगत असाढ़ कहत हो, चलन किसोर।
 घन घुमड़े चहुँ ओरन, नाचत मोर॥ 29 ॥
 लखि पावस ऋतु सजनी, पिय परदेस।
 गहन लग्यौ अबलनि पै, धनुष सुरेस॥ 30 ॥
 बिरह बढ़्यौ सखि अंगन, बढ़्यौ चबाव।
 कर्यौ निठुर नन्दनन्दन, कौन कुदाव ?॥ 31 ॥
 भज्यो कितै न जनम भरि, कितनी जाग।
 संग रहत या तन की, छाँही भाग॥ 32 ॥
 भज रे मन नंदनन्दन, बिपति बिदार।
 गोपी जन-मन-रंजन, परम उदार॥ 33 ॥
 जदपि बसत है सजनी, लाखन लोग।
 हरि बिन कित यह चित को, सुख संजोग॥ 34 ॥
 जदपि भई जल-पूरित, छितव सुआस।
 स्वाति बूँद बिन चातक, मरत पिआस॥ 35 ॥
 देखन ही को निस दिन, तरफत देह।
 यही होत मधुसूदन, पूरन नेह ?॥ 36 ॥
 कब ते देखत सजनी, बरसत मेह।
 गनत न चढ़े अटन पै, सने सनेह॥ 37 ॥
 बिरह बिथा ते लखियत, मरिबौ भूरि।
 जौ नहिं मिलिहै मोहन, जीवन मूरि॥ 38 ॥
 ऊधो भलो न कहनौ, कछु पर पूठि।
 साँचे ते भे झूठे, साँची झूठि॥ 39 ॥
 भादों निस अँधिअरिया घर अँधिआर।
 बिसर्यौ सुघर बटोही, शिव आगार॥ 40 ॥
 हौं लखिहौं री सजनी, चौथ-मयंक।
 देखौं केहि विधि हरि सों लगै कलंक॥ 41 ॥

इन बातन कछु होत न कहो हजार ।
 सब ही तैं हँसि बोलत, नन्द-कुमार ॥ 42 ॥
 कहा छलत हो ऊधो, दै परतीति ।
 सपनेहू नहिं बिसरै, मोहन-मीति ॥ 43 ॥
 बन उपवन गिरि सरिता, जिती कठोर ।
 लगत दहे से बिछुरे, नंदकिसोर ॥ 44 ॥
 भलि भलि दरसन दीनेहु, सब निसि-टारि ।
 कैसे आवन कीनेहु, हौं बलिहारि ॥ 45 ॥
 आदिहि ते सब छुटि गा, जग ब्यौहार ।
 ऊधो अब न तिनों भरि, रही उधार ॥ 46 ॥
 घेर रह्यौ दिन रतियाँ, बिरह बलाय ।
 मोहन की वह बतियाँ, ऊधो हाय ॥ 47 ॥
 नर नारी मतवारी, अचरज नाहिं ।
 होत विटप हू नाँगे फागुन माँहि ॥ 48 ॥
 सहज हँसोई बातें, होत चबाइ ।
 मोहन को तनि सजनी, दै समुझाइ ॥ 49 ॥
 ज्यों चौरासी लख में, मानुष देह ।
 त्यों ही दुर्लभ जग में, सहज सनेह ॥ 50 ॥
 मानुष तन अति दुर्लभ, सहजहि पाय ।
 हरि-भजि कर सत संगति, कह्यौ जताय ॥ 51 ॥
 अति अद्भुत छबि सागर, मोहन गात ।
 देखत ही सखि बूडत, दृग जलजात ॥ 52 ॥
 निरमोही अति झूठौ, साँवर गात ।
 चुभ्यौ रहत चित को धौं, जानि न जात ॥ 53 ॥
 बिन देखे कल नाहि न, इन अँखियान ।
 पल पल कटत कलप सों, अहो सुजान ॥ 54 ॥
 जब तक मोहन झूठी, सौहें खात ।
 इन बातन ही प्यारे, चतुर कहात ॥ 55 ॥
 ब्रज-बासिन के मोहन, जीवन-प्राण ।
 ऊधो यह सँदेसवा, अकह कहान ॥ 56 ॥

मोहि मीत बिन देखे, छिन न सुहात।
 पल पल भरि भरि उलझत, दृग जलजात॥57॥
 जब ते बिछुरे मितवा, कहु कस चैन।
 रहत भर्यो हिय साँसन, आँसुन नैन॥58॥
 कैसे जीवत कोऊ, दूरि बसाय।
 पल अन्तर हू सजनी, रद्यो न जाय॥59॥
 जान कहत हों ऊधो, अवधि बताइ।
 अवधि अवधि लौं दुस्तर, परत लखाइ॥60॥
 मिलन न बनै भाखत, इन इक टूक।
 भये सुनत ही हिय के, अगनित टूक॥61॥
 गये हेरि हरि सजनी, बिहँसि कछूक।
 तब ते लगनि अगिनि की, उठत भबूक॥62॥
 मनमोहन की सजनी, हँसि बतरान।
 हिय कठोर कीजत पै, खटकत आन॥63॥
 होरी पूजत सजनी जुर नर नारि।
 हरि बिनु जानहु जिय में, दर्ई दवारि॥64॥
 दिस बिदसान करत ज्यों, कोयल कूक।
 चतुर उठत है त्यों त्यों, हिय में हूक॥65॥
 जब तें मोहन बिछुरे, कछु सुधि नाहिं।
 रहे प्राण परि पलकनि, दृग मग माहिं॥66॥
 उझकि उझकि चित दिन दिन, हेरत द्वार।
 जब ते बिछुरे सजनी, नन्दकुमार॥67॥
 जक न परत बिन हेरे, सखिन सरोस।
 हरि न मिलत बसि नेरे, यह अफसोस॥68॥
 चतुर मया करि मिलिहौ, तुरतहिं आय।
 बिन देखे निसबासर, तरफत जाय॥69॥
 तुम सब भाँतिन चतुरे, यह कल बात।
 होरी से त्योंहारन, पीहर जात॥70॥
 और कहा हरि कहिये, धनि यह नेह।
 देखन ही को निसदिन तरफत देह॥71॥

जब ते बिछुरे मोहन, भूख न प्यास।
बेरि बेरि बढि आवत, बड़े उसास॥72॥
अन्तरगत हिय बेधत, छेदत प्रान।
विष सम परम सबन तें, लोचन बान॥73॥
गली अँधेरी मिल कै, रहि चुपचाप।
बरजोरी मनमोहन, करत मिलाप॥74॥
सास ननद गुरु पुरजन, रहे रिसाय।
मोहन हू अस निसरे, हे सखि हाय॥75॥
उन बिन कौन निबाहै, हित की लाज।
ऊधो तुमहू कहियो, धनि ब्रजराज॥76॥
जेहिके लिये जगत में बजै निसान।
तेहिते करे अबोलन, कौन सयान॥77॥
रे मन भज निस बासर, श्री बलबीर।
जे बिन जाँचे टारत, जन की पीर॥78॥
बिरहिन को सब भाखत, अब जनि रोय।
पीर पराई जानै, तब कहु कोय॥79॥
सबै कहत हरि बिछुरे, उर धर धीर।
बौरी बाँझ न जानै, ब्यावर पीर॥80॥
लखि मोहन की बंसी, बंसी जान।
लागत मधुर प्रथम पै, बेधत प्रान॥81॥
कोटि जतन हू फिरतन बिधि की बात।
चकवा पिंजरे हू सुनि बिमुख बसात॥82॥
देखि ऊजरी पूछत, बिन ही चाह।
कितने दामन बेचत, मैदा साह॥83॥
कहा कान्ह ते कहनौ, सब जग साखि।
कौन होत काहू के, कुबरी राखि॥84॥
तैं चंचल चित हरि कौ, लियौ चुराइ।
याही तैं दुचिती सी, परत लखाइ॥85॥
मी गुजरद ई दिलरा, बेदिलदार।
इक इक साअत हम चूँ, साल हज़ार॥86॥(फ़ारसी)

नवनागर पद परसी, फूलत जौन।
 ११२० मेटत सोक असोक सु, अचरज कौन॥८७॥
 समुझि मधुप कोकिल की, यह रस रीति।
 ११२० सुनहु श्याम की सजनी, का परतीति॥८८॥
 नृप जोगी सब जानत, होत बयार।
 ११२० सदेसन तौ राखत, हरि ब्यौहार॥८९॥
 मोहन जीवन प्यारे, कस हित कीन।
 ११२० दरसन ही कों तरफत, ये दृग मीन॥९०॥
 भज मन राम सियापति, रघुकुल ईस।
 दीनबंधु दुख टारन, कौसलधीस॥९१॥
 भज नरहरि, नारायन, तजि बकवाद।
 प्रगटि खंभ ते राख्यो, जिन प्रहलाद॥९२॥
 गोरज-धन-बिच राखत, श्री ब्रजचंद।
 तिय दामिनि जिमि हेरत, प्रभा अमंद॥९३॥
 गर्कज मै शुद आलम, चंद हज़ार।
 बे दिलदार के गीरद, दिलम करार॥९४॥(फ़ारसी)
 दिलबर ज़द बर जिगरम, तीरे निगाह।
 तपदिः जाँ मीआयद, हरदम आह॥९५॥(फ़ारसी)
 कै गायम अहवालम, पेशे-निगार।
 तनहा नज़र न आयद, दिल लाचार॥९६॥(फ़ारसी)
 लोग लुगाई हिल मिल, खेलत फाग।
 पर्यौ उड़ावन मोकों, सब दिन काग॥९७॥
 मो जिय कौरी सिगरी, ननद जिठानि।
 भई स्याम सों तब त, तनक पिछानि॥९८॥
 होत विकल अनलेखे, सुघर कहाय।
 को सुख पावत सजनी, नेह लगाय॥९९॥
 अहो सुधाकर प्यारे, नेह निचोर।
 देखन ही कों तरसै, नैन चकोर॥१००॥
 आँखिन देखत सब ही, कहत सुधारि।
 पै जग साँची प्रीत न, चातक टारि॥१०१॥

पथिक पाय पनघटवा कहत पियाव।
 पैयाँ परौ ननदिया, फेरि कहाव।।102।।
 बरि गइ हाथ उपरिया, रहि गइ आगि।
 घर कै बाट बिसरि गइ, गुहनै लागि।।103।।
 अनधन देखि लिलरवा, अनख न धार।
 समलहु दिय दुति मनसिज, भल करतार।।104।।
 जलज बदन पर थिर अलि, अनखन रूप।
 लीन हार हिय कमलहि, डसत अनूप।।105।।

(101) यहीं तक पं. मायाशंकर से प्राप्त प्रति समाप्त होती है।

(102) 'कविता कौमुदी' से उद्धृत

(103) ना. प्रचारिणी पत्रिका, नया संदर्भ, भा. 9, पृ. 151

(104) हिन्दी शब्दसागर 'अनख' शब्द।

सह सावि उर साव, आवि लेन अहं जे विव
सागी साहिं, मुजाव, पमकि भवकि को को को ॥३॥

मुस्क मुस्क भरिपूर, हुनि हुनि सुखन लेन
चातक चातक धुरि, के को विव को को ॥४॥

दीपक डिण्डिमाय, नखन अहं को के नखि
कार विहोन पडिमाय, कुन लडि विन लेनि को ॥५॥

पलटि वली मुमुकाय दुनि लेनि उमकाय अहि
बायो ली उमकाय लली लेनि को को ॥६॥

यह नाहि शृंगार-सोरठा को को
साहु न भई सोर, गीत न केन एक को ॥७॥

रजिमत पुतरी गान, ननहुं जगज मनुका को
कोरी अलिगान, को के अरस को ॥८॥

शृंगार-सोरठा

गीतः १००० ॥ १००० ॥ १००० ॥ १००० ॥
 गीतः १००० ॥ १००० ॥ १००० ॥ १००० ॥
 गीतः १००० ॥ १००० ॥ १००० ॥ १००० ॥
 गीतः १००० ॥ १००० ॥ १००० ॥ १००० ॥
 गीतः १००० ॥ १००० ॥ १००० ॥ १००० ॥
 गीतः १००० ॥ १००० ॥ १००० ॥ १००० ॥
 गीतः १००० ॥ १००० ॥ १००० ॥ १००० ॥

गीतः-१०००

गीतः १००० ॥ १००० ॥ १००० ॥ १००० ॥
 गीतः १००० ॥ १००० ॥ १००० ॥ १००० ॥
 गीतः १००० ॥ १००० ॥ १००० ॥ १००० ॥
 गीतः १००० ॥ १००० ॥ १००० ॥ १००० ॥

गीतः १००० ॥ १००० ॥ १००० ॥ १००० ॥

गई आगि उर लाय, आगि लेन आई जो तिय।
लागी नाहिं, बुझाय, भभकि भभकि बरि-बरि उठै॥१॥

तुरुक गुरुक भरिपूर, डूबि डूबि सुरगुरु उठै।
चातक चातक दूरि, देह दहे बिन देह को॥२॥

दीपक हिए छिपाय, नबल वधू घर ले चली।
कर विहीन पछिताय, कुच लखि जिन सीसै धुनै॥३॥

पलटि चली मुसुकाय दुति रहीम उपजात अति।
बाती सी उसकाय मानों दीनी दीप की॥४॥

यक नाही यक पी हिय रहीम होती रहै।
काहु न भई सरीर, रीति न बेदन एक सी॥५॥

रहिमन पुतरी स्याम, मनहुँ जलज मधुकर लसै।
कैधों शालिग्राम, रूपे के अरघा धरे॥६॥

मदनाष्टक

मदनाष्टक

कल्याण

शरद'-निशि निशीथे चाँद की रोशनाई।
 सघन वन निकुंजे कान्ह वंशी बजाई॥
 रति, पति, सुत, निद्रा, साइयाँ छोड़ भागी।
 मदन-शिरसि भूयः क्या बला आन लागी^२॥१॥

कलित ललित माला या जवाहिर जड़ा था।
 चपल चखन वाला चाँदनी में खड़ा था॥
 कटि-तट बिच मेला पीत सेला नवेला।
 अलि बन अलबेला यार मेरा अकेला॥२॥

दृग छकित छबीली छैलरा की छरी थी।
 मणि जटित रसीली माधुरी मूँदरी थी॥
 अमल कमल ऐसा खूब से खूब देखा।
 कहि सकत न जैसा श्याम का हस्त देखा॥३॥

पाठान्तर— 1. सरद।

2. (अ) असनी वाले पाठ में छठा तथा 'का. ना. प्र. पत्रिका' वाले पाठ में चौथा छंद है :

(अ) असनी से प्राप्त मदनपाठक में प्रारम्भिक छन्द इस प्रकार है :

दृष्टा तत्र विचित्रतां तरुलतां, मैं था गया बाग में।

काश्चित् तत्र कुरंगशावनयनां, गुल तोड़ती थी खड़ी॥

उन्मद्भू धनुषा कटाक्षविशिखैः, घायल किया था मुझे।

तत्सीदामि सदैव मोहजलधौ, हे दिल शुकारो गुज़र॥

'काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका' और 'रहीम कवितावली' में पहला छन्द है :

मनसि मम नितान्तम् आयकें बासु कीया।

तन धन सब मेरा मान तैं छीन लीया॥

अति चतुर मृगाक्षी देखतैं मौन भागी।

मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥

कठिन¹ कुटिल कारी देख दिलदार जुलफें²।
 अलि कलित बिहारी³ आपने जी की कुलफें⁴॥
 सकल शशिकला को रोशनी-हीन लेखौं।
 अहह! ब्रजलला को किस तरह फेर देखौं⁵॥४॥

जरद बसन-वाला गुल चमन देखता था।
 झुक झुक मतवाला गावता रेखता था॥
 श्रुति युग चपला से कुण्डलें झूमते थे।
 नयन कर तमाशे मस्त है घूमते थे॥५॥

तरल तरनि सी हैं तीर सी नोकदारें।
 अमल कमल सी हैं दीर्घ हैं दिल बिदारें॥
 मधुर मधुप है माल मस्ती न राखें।
 विलसति मन मेरे सुंदरी श्याम आँखें॥६॥

1. 'का. ना. प्रचारिणी पत्रिका' और 'रहीम कवितावली' में दूसरा व तीसरा छन्द है :

(2) वहति मरुति मन्दम् में उठी राति जागी।

(असनी वाले पाठ में यह चौथा छन्द है।)

शशि-कर कर लागे सेल ते पैन बागी॥

(शशि-कर कर लागे सेज को छोड़ भागी)

अहह बिगत स्वामी क्या करों मैं अभागी।

मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥

(3) हरनयनहुताशष्वालय जो जलाया।

रति-नयनजलौघे खाक बाकी बहाया॥

तदपि दहत चित्तम्, मामकम् क्या करोगी।

मदन शिरसि भूयः क्यों बला आन लागी॥

पाठान्तर— 1. अलक। 2. जुल्फें। 3. निहारें। 4. आपने दिल की कुलफें। 5. असनी वाले पाठ में यह तीसरा छन्द है।

भुजंग जुग किधौं हैं काम कमनैत सोहैं।
 नटवर! तव मोहैं बाँकुरी मान भौहैं॥
 सुनु सखि! मृदु बानी बेदुरुस्ती अकिल में।
 सरल सरल सानी कै गई सार दिल में॥७॥

पकरि परम प्यारे साँवरे को मिलाओ।
 असल अमृत प्याला क्यों न मुझको पिलाओ॥
 इति वदति पठानी मनमथांगी विरागी।
 मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥८॥

पाठान्तर— 1. असनी वाले पाठ में सातवाँ छन्द इस प्रकार है :

हरनयनहुताशज्वाला भस्मभूतः।
 रतिनयन जलौघे खाक बाकी बहाया॥
 तदपि दहतु चित्तं मामकम् क्या करौगी।
 मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥

(‘का. ना.प्र. पत्रिका’ तथा ‘रहीम कवितावली’ के पाठ में यह तीसरा छन्द है।)

‘का. ना.प्र. पत्रिका’ तथा ‘रहीम कवितावली’ में सातवाँ छन्द इस प्रकार है :

तब वदन मयंकी ब्रह्म की चोप बाढ़ी।
 मुख छवि लखि भू पै चाँद ते काति गाढ़ी॥
 मदन-मयित रंभा देखतै मोहि भागी।
 मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥

2. असनी वाला अंतिम छन्द है

हिमरितु रतिघामा सेज लोटैं अकेली।
 उठत विरह ज्वाला क्यों सहैरी सहेली॥
 इति वदति पठानी मदमदांगी विरागी।
 (चकित नयन वाला तत्र निद्रा न लागी)
 मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥

(‘का. ना.प्र. पत्रिका’ तथा ‘रहीम कवितावली’ में यह पाँचवाँ छन्द है।)

‘का. ना.प्र. पत्रिका’ तथा ‘रहीम कवितावली’ में यह पाँचवाँ छन्द है :

नभसि घने घनान्ते है घनी कैसी छाया।
 पथिकजनबधूनाम् जन्म केता गँवाया॥
 इति वदति पठानी मन्मथांगी विरागी।
 मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥

फुटकर पद

ॐ नमः शिवाय

(धनाक्षरी)

अति अनियारे मानों सान दै सुधारे,
महा विष के विषारे¹ ये करत पर-घात हैं।
ऐसे अपराधी देख अगम अगाधी यहै,
साधना जो साधी हरि हिय में अन्हात हैं॥
बार बार बोरे याते लाल लाल डोरे भये,
तोहू तो 'रहीम' थोरे बिधि ना सकात हैं।
घाइक घनेरे दुखदाइक हैं मेरे नित,
नैन बान तेरे उर बेधि बेधि जात हैं॥१॥

पट चाहे तन पेट चाहत छदन मन
चाहत है धन, जेती संपदा सराहिबी²।
तेरोई कहाय कै 'रहीम' कहै दीनबंधु
आपनी बिपत्ति जाय काके द्वार काहिबी॥
पेट भर खायो चाहे, उद्यम बनायो चाहे,
कुटुंब³ जियायो चाहे काढ़ि गुन लाहिबी।
जीविका हमारी जो पै औरन के कर डारो,
ब्रज के बिहारी तो तिहारी कहाँ⁴ साहिबी॥२॥

बड़ेन सों जान पहिचान कै रहीम काह,
जो पै करतार ही न सुख देनहार है।
सीत-हर सूरज सों नेह कियो याही हेत,⁵
ताऊ पै कमल जारि डारत तुषार है⁶॥

पाठान्तर— 1. विषारे। 2. सराहिबी। 3. कुटुम। 4. कहा। 5. सीत-हर सूरज सों प्रीति कियो पंकज ने।
6. तऊ कंज-वनन को जारत तुषार है।

नीरनिधि माँहि धस्यो¹ शंकर के सीस बस्यो,
 तऊ ना कलंक नस्यो ससि में सदा रहै।
 बड़ो रीझिवार² है, चकोर दरबार है,
 कलानिधि सो यार तऊ चाखत अंगार है³ ॥ 3 ॥

मोहिबो निछोहिबो सनेह में तो नयो नाहिं,
 भले ही निठुर भये काहे को लजाइये ॥
 तन मन रावरे सो मतों के मगन हेतु,
 उचरि गये ते कहा तुम्हें खोरि लाइये ॥
 चित लाग्यो जित जैये तितही 'रहीम' नित,
 धाधवे के हित इत एक बार आइये।
 जान हुरसी उर बसी है तिहारे उर,
 मोसों प्रीति बसी तऊ हँसी न कराइये ॥ 4 ॥

(सवैया)

जाति हुती सखि गोहन में मन मोहन कों लखिकै ललचानो।
 नागरि नारि नई ब्रज की उनहूँ नँदलाल को रीझिबो जानो ॥
 जाति भई फिरि कै चितई तब भाव 'रहीम' यहै उर आनो।
 ज्यों कमनैत दमानक में फिरि तीर सों मारि लै जात निसानो ॥ 5 ॥

जिहि कारन बार न लाये कछू गहि संभु-सरासन दोय किया।
 गये गेहहिं त्यागि के ताही⁴ समै सु निकारि पिता बनवास दिया ॥
 कहे बीच 'रहीम' रह्यौ न कछू जिन कीनो हुतो बिनुहार⁵ हिया।
 बिधि यों न सिया रसबार सिया करबार सिया पिय सार सिया ॥ 6 ॥

पाठान्तर— 1. क्षीरनिधि बीच-धस्यो। उदधि बीच धस्यो। क्षीरनिधि माँहि धँस्यो।

2. रीझिवार। 3. सुधाधर यार ए पै चुगत अँगार है।

(6) नवीन-कृत 'प्रबोध रस-सुखसागर' में यह पाठ है :

जिहि कारन बार न लायो कछू गहि संभु सरासन दैजु किया।

न हतो समयो बनवासहु को पै निकास पिता बनवास दिया ॥

भजि भेद 'रहीम' रह्यौ न कछू करि राख हुती उनहार दिया।

विधि यों न सिया सुख बार सिया को सुवार सिया पतिवार सिया ॥

4. ताहि। 5. उनहार।

दीन चहैं करतार जिन्हें सुख सो तो 'रहीम' टरै नहिं टारे।
 उद्यम पौरुष कीने बिना धन आवत आपुहिं हाथ पसारे॥
 दैव हँसे अपनी अपनी बिधि के परपंच न जात बिचारे।
 बेटा भयो वसुदेव के धाम औ दुंदुभि बाजत नंद के द्वारे॥ 7 ॥

पुतरी अतुरीन कहूँ मिलि कै लागि लागि गयो कहूँ काहु करैटो।
 हिरदै दहिबै सहिबै ही को है कहिबै को कहा कछु है गहि फेटो॥
 सूधे चितै तन हा हा करें हू 'रहीम' इतो दुख जात क्यों मेटो।
 ऐसे कठोर सों औ चितचोर सों कौन सी हाय घरी भई भेंटो॥ 8 ॥

कौन धौं सीख 'रहीम' इहाँ इन नैन अनोखि यै नेह की नाँधनि।
 प्यारे सों पुन्यन भेंट भई यह लोक की लाज बड़ी अपराधिनि॥
 स्याम सुधानिधि आनन को मरिये सखि सूँधे चितैवे की साधनि।
 ओट किए रहतै न बने कहतै न बने बिरहानल बाधनि॥ 9 ॥

(दोहा)

धर रहसी रहसी धरम खप जासी खुरसाण।
 अमर बिसंभर ऊपरै, राखो नहचौ राण॥ 10 ॥
 तारायनि ससि रैन प्रति, सूर होहि ससि गैन।
 तदपि अँधेरो है सखी, पीऊ न देखे नैन॥ 11 ॥

पाठान्तर— 1. नवीन ने दूसरा यह पाठ दिया है और सन् 1897 की प्रकाशित 'भाषा-सार' में भी यही पाठ है।

- दीनो चहै करतार जिन्हें सुख कौन 'रहीम' सकै तिहि टारे।
 उद्यम कोउ करो न करो धन आवत है विन ताके हँकारे॥
 दैव हँसे सब आपुस में विधि के परपंच न कोउ निहारे॥
 बालक आनक दुंदुभी के भयो दुंदुभी बाजत आन के द्वारे॥
 (9) सीखी है ऐसी 'रहीम' कहा इन नैन अनोखे धौं नेह की नाँधन।
 ओट भये रहते न बने कहते न बने बिरहानल राघन (दाघन)॥
 पुन्यन प्यारे सों भेंट भई ए पै मौन (भौन) कुसंग मिल्यो अपराधन।
 स्याम सुधानिधि आनन को (की) मरिये सखि सूधे चितैवे की साधन॥

- (10) धर रहसी रहसी धरा खिस जासे खुरसाण।
 अमर विसंभर ऊपरै, नहचौ राखो राण।

(पद)

छबि आवन मोहनलाल की ।
काछनि काछे कलित मुरलि कर पीत पिछौरी साल की^१ ।।
बंक तिलक केसर को कीने दुति मानो बिधु बाल की ।
बिसरत नाहिं सखि मो मन ते चितवनि नयन बिसाल की ।।
नीकी हँसनि अधर सधरनि की छबि छीनी सुमन गुलाल की ।
जल सों डारि दियो पुरइन पर डोलनि मुकता माल की ।।
आप मोल बिन मोलनि डोलनि बोलनि मदनगोपाल की ।
यह सरूप निरखै सोइ जानै इस 'रहीम' के हाल की ।। 12 ।।

कमल-दल नैननि की उनमानि ।
बिसरत नाहिं सखी मो मन ते मंद मंद मुसकानि ।।
यह दसननि दुति चपला हूते महा चपल चमकानि ।
बसुधा की बसकरी मधुरता सुधा-पगी बतरानि ।।
चढ़ी रहे चित उर बिसाल को मुकुतमाल थहरानि ।
नृत्य-समय पीतांबर हू की फहरि फहरि फहरानि ।।
अनुदिन श्री वृन्दावन ब्रज ते आवन आवन जानि ।
अब 'रहीम' चित ते न टरति है सकल स्याम की बानि ।। 13 ।।

पाठान्तर— 1. लाल काछनी काछे कर मुरली पीत पिछौरी साल की ।

(श्लोक)

अनीला नटपञ्चमा तव पुटं श्रीकृष्ण! या भूमिका।
श्रीमाकसललावरासिदमुपसंग्रहीतये प्रार्थयि ॥
प्रीतस्तं यदि येनितेभ्य भवत्सु सारावैत रेनि मे।
नोचेदं हृदि कदापि मानसं पुनस्तत्कालं श्री भूमिकाय ॥ १ ॥

(श्लोक)

हे श्रीकृष्ण! आपकी प्रीत्यर्थ आज हम में पर की बात पर आपके सामने
आया जाने से चाहती आज हम धारण करती हैं। हे प्रियेन्द्र! यदि आप
हमें (पुत्र) देकर प्रसन्न हुए हैं तो जो मैं सीखा हूँ उसे देखिए और यदि
प्रसन्न हो तो ऐसी आज्ञा दीजिए कि मैं फिर कभी ऐसे लोग धारण कर इस
पृथ्वी पर न आया जाऊँ।

संस्कृत श्लोक

कथमेकं ह्यन्यथा न भवति न च त्वत्पुत्रं न च त्वत्पुत्रं
नटपञ्चमं तव प्रीतिं स्वीयं यदि त्वी मे तव
हे त्रिभुवन नाथ! प्रीति को हृदय में धार्य ॥
जो तो प्रसन्न तो हेतु जब मुझसे प्रेम प्रसन्न प्रीति।
जो मैं आज्ञा तो यद्यपि प्रेम प्रसन्न कर दें न स्वीकृत ॥

(श्लोकार्थ) पुत्री

तु जल श्रीकृष्ण! हमें पर सग प्रीत्यर्थ स्वीकृत।
प्रियेन्द्र यदि यदि हेतु मैं प्रीति प्रियेन्द्र प्रीति ॥

(श्लोकार्थ) श्रीकृष्ण

श्रीकृष्ण प्रीति ॥

(श्लोक)

आनीता नटवन्मया तव पुरः श्रीकृष्ण! या भूमिका ।
व्योमाकाशखखांबराब्धिवसवस्त्वत्प्रीतयेऽद्यावधि । ।
प्रीतस्त्वं यदि चेन्निरीक्ष्य भगवन् स्वप्रार्थित देहि मे^१ ।
नोचेद् ब्रूहि कदापि मानय पुनस्त्वेतादृशीं भूमिकाम्^२ । । । ।

(अर्थ)

हे श्रीकृष्ण! आपके प्रीत्यर्थ आज तक मैं नट की चाल पर आपके सामने लाया जाने से चौरासी लाख रूप धारण करता रहा । हे परमेश्वर! यदि आप इसे (दृश्य) देख कर प्रसन्न हुए हों तो जो मैं माँगता हूँ उसे दीजिए और नहीं प्रसन्न हों तो ऐसी आज्ञा दीजिए कि मैं फिर कभी ऐसे स्वाँग धारण कर इस पृथ्वी पर न लाया जाऊँ ।

कबहुँक खग मृग मीन कबहुँ मर्कटतनु धरि कै ।
कबहुँक सुर-नर-असुर-नाग-मय^३ आकृति करि कै । ।
नटवत् लख चौरासि स्वाँग धरि धरि मैं आयो ।
हे त्रिभुवन नाथ! रीझ को कछू न पायो । ।
जो हो प्रसन्न तो देहु अब मुकति दान माँगहु बिहँस ।
जो पै उदास तो कहहु इम मत धरु रे नर स्वाँग अस । ।

(खानखानाँ कृत)

बपु लख चौरासी सजे नट सम रिझवन तोहि ।
निरखि रीझि गति देहु कै खीझि निबारहु मोहि । ।

(भारतेन्दु जी कृत)

पाठान्तर— १. प्रीतश्चेदय तां निरीक्ष्य भगवन् सत्.... ।

२. पुनर्माभीदृशीं भूमिका । ३. मय ।

रिझवन हित श्रीकृष्ण, स्वाँग में बहु विध लायो ।
 पुर तुम्हार है अवनि अहंवह रूप दिखायो ।
 गगन-बेत-ख-ख-व्योम-वेद बसु स्वाँग दिखाए ।
 अंत रूप यह मनुष रीझ के हेतु बनाए ।।
 जो रीझे तो दीजिए लजित रीझ जो चाय ।
 नाराज भए तो हुकुम करु रे स्वाँग फेरि मन लाय¹ ।।

(श्लोक)

रत्नाकरोऽस्ति सदनं गृहिणी च पद्मा,
 किं देयमस्ति भवते जगदीश्वराय ।
 राधागृहीतमनसे मनसे च तुभ्यं,
 दत्तं मया निजमनस्तदिदं गृहाण ॥ 2 ॥

(अर्थ)

रत्नाकर अर्थात् समुद्र आपका गृह है और लक्ष्मी जी आपकी गृहिणी हैं, तब हे जगदीश्वर! आप ही बतलाइए कि आप को क्या देने योग्य बच गया? राधिका जी ने आपका मन हरण कर लिया है, जिसे मैं आपको देता हूँ, उसे ग्रहण कीजिए ।

रत्नाकर गृह, श्री प्रिया देय कहा जगदीश ।
 राधा मन हरि लीन्ह तब कस न लेहु मम ईश ॥
 (रत्न)

(श्लोक)

अहल्या पाषाणः प्रकृतियशुरासीत् कपिचमू—
 गुहो भूच्चांडालस्त्रितयमपि नीतं निजपदम् ॥
 अहं चित्तेनाश्मा पशुरपि तवार्चादिकरणे ।
 क्रियाभिश्चांडालो रघुवर नमामुद्धरसि किम् ॥ 3 ॥

(अर्थ)

अहल्याजी पत्थर थीं, बंदरों का समूह पशु था और निषाद चांडाल था पर तीनों को अपने-अपने पद में शरण दी । मेरा चित्त पत्थर है, आपके पूजन में पशु

1. मलासीर के ठाकुर भूरिसिंह के 'विविध संग्रह', पृ. 89 पर इसी आशय का पहला छप्पय खानखाना कृत दिया है और यह दूसरा छप्पय मुं. देवीप्रसाद जी ने किसी अज्ञात कवि का दिया है ।

समान हूँ और कर्म से भी चांडाल सा हूँ इसलिए मेरा क्यों नहीं उद्धार करते ।

(श्लोक)

यद्यात्रया व्यापकता हता ते भिदैकता वाक्परता च स्तुत्या ।

ध्यामेन बुद्धेः परतः परेशं जात्याऽजता क्षन्तुमिहार्हसि त्वं ।। 4 ।।

(अर्थ)

यात्रा करके मैंने आपकी व्यापकता, भेद से एकता, स्तुति करके वाक्परता, ध्यान करके आपका बुद्धि से दूर होना और जाति निश्चित करके आपका अजातिपन नाश किया है, सो हे परमेश्वर! आप इन अपराधों को क्षमा करो ।

(श्लोक)

दृष्टा तत्र विचित्रिता तरुलता, मैं था गया बाग में ।

काचित्तत्र कुरंगशावनयना, गुल तोड़ती थी खड़ी ।।

उन्मद्भ्रूधनुषा कटाक्षविशिः, घायल किया था मुझे ।

तत्सीदामि सदैव मोहजलधौ, हे दिल गुजारो शुकर ।। 5 ।।

(अर्थ)

विचित्र वृक्षलता को देखने के लिए मैं बाग में गया था । वहाँ कोई मृग-शावक-नयनी खड़ी फूल तोड़ रही थी । भौं रूपी धनुष से कटाक्ष रूपी बाण चलाकर उसने मुझे घायल किया था । तब मैं सदा के लिए मोह रूपी समुद्र में पड़ गया । इससे हे हृदय, धन्यवाद दो ।

(श्लोक)

एकस्मिन्दिवसावसानसमये, मैं था गया बाग में ।

काचित्तत्र कुरंगबालनयना, गुल तोड़ती थी खड़ी ।।

तां दृष्ट्वा नवयौवनां शशिमुखीं, मैं मोह में जा पड़ा ।

नो जीवामि त्वया विना शृणु प्रिये, तू यार कैसे मिले ।। 6 ।।

(अर्थ)

एक दिन संध्या के समय मैं बाग में गया था । वहाँ कोई मृगछौने के नेत्रों के सामान आँख वाली खड़ी फूल तोड़ती थी । उस चन्द्रमुखी मयी युवती को देखकर मैं मोह में जा पड़ा । हे प्रिये! सुनो, तुम्हारे बिना मैं नहीं जी सकता (इसलिए बताओ) कि तुम कैसे मिलोगी?

(श्लोक)

अच्युतच्चरणातरंगिणि शशिशेखर-मौलि-मालतीमाले ।
मम तनु-वितरण-समये हरता देया न मे हरिता ॥ 7 ॥

(अर्थ)

विष्णु भगवान के चरणों से प्रवाहित होने वाली और महादेव जी के मस्तक पर मालती माला के समान शोभित होने वाली हे गंगे, मुझे तारने के समय महादेव बनाना न कि विष्णु । अर्थात् तब मैं तुम्हें शिर पर धारण कर सकूँगा । इसी अर्थ का दोहा सं. 2 भी है ।

(बहुभाषा-श्लोक)

भर्ता प्राची गतो मे, बहुरि न बगदे, शूँ करूँ रे हवे हूँ ।
माझी कर्माचि गोष्टी, अब पुन शुणसि, गाँठ धेलो न ईठे ॥
म्हारी तीरा सुनोरा, खरच बहुत है, ईहरा टाबरा रो,
दिट्ठी टैंडी दिलों दो, इश्क अल् फिदा, ओडियो बच्चनाडू ॥ 8 ॥

(अर्थ)

मेरे पति पूर्व की ओर जो गए सो फिर न लौटे, अब मैं क्या करूँ । मेरे कर्म की बात है । अब और सुनो कि गाँठ में एक अधेला भी नहीं है । मुझसे सुनो कि खर्च अधिक है और परिवार भी बहुत है । तेरे देखने को मन में ऐसा हो रहा है कि प्रेम पर निछावर हो जाऊँ । (विरहिणी नायिका इस प्रकार कातर हो रही थी कि किसी ने कहा कि) वह आया है ।

शब्दार्थ

अगोचर—जो दृश्य, श्रुत ।

अग्राजगत्—अद्वितीय शक्ति ।

अग्रिम—पुनः ।

अग्रजगत्—अग्र शक्ति ।

अग्रोदर—सोम्य या सोम्य ।

अग्रोदर—जो जल-विषय से अग्रोदर से जल प्रवाह करे ।

अग्रज—अग्र, शक्ति ।

अग्रजगत्—अद्वितीय या अग्रजगत् ।

अग्रजगत्—अग्र शक्ति, अग्र शक्ति, अग्र शक्ति ।

अग्रजगत्—अग्र शक्ति, अग्र शक्ति, अग्र शक्ति ।

अग्रज—अग्रज ।

अग्रजगत्—अग्र शक्ति ।

अग्रजगत्—अग्र शक्ति, अग्र शक्ति ।

अग्रज—अग्रजगत् ।

अग्र शक्ति—अग्र शक्ति, अग्र शक्ति, अग्र शक्ति । अग्र शक्ति, अग्र शक्ति, अग्र शक्ति ।

अग्रोदर—अग्रोदर ।

अग्रजगत्—अग्रजगत् ।

अग्रजगत्—अग्रजगत्, अग्रजगत्, अग्रजगत् ।

अग्रजगत्—अग्रजगत्, अग्रजगत्, अग्रजगत् ।

अग्रजगत्—अग्रजगत्, अग्रजगत्, अग्रजगत् ।

अग्रजगत्—अग्रजगत् ।

अग्रजगत्—अग्रजगत् ।

अग्रजगत्—अग्रजगत् ।

अग्रजगत्—अग्रजगत्, अग्रजगत्, अग्रजगत् ।

अग्रजगत्—अग्रजगत्, अग्रजगत्, अग्रजगत् ।

अग्रजगत्—अग्रजगत् ।

परिशिष्ट

(श्रीक)

अमुकानामधर्माणि अस्मिन्नेव-प्रीति-मालतीनाम् ।
अहं ननु-विदित-समये ह्यहं वेदा न मे अस्ति ॥७॥

(अथ)

विष्णु भगवान् मे चरणों से प्रसन्न होने वाली और महादेव जी के
महात्म्य पर भावपूर्ण स्मरण से समाप्त होकर होने वाली है कि, मुझे तबने के
समय महादेव भगवान् न कि विष्णु । अर्थात् तब मैं तुम्हें फिर भी धारण कर
सकूँगा। इसी अर्थ का दोहा ल. २ भी है।

(चतुर्थ-श्लोक)

महा प्रीति मते मे, अहं न भगदे, नुं कलं हे हने हूँ ।
महा अर्थात् मोक्षी, अहं नुं कलं, मोक्ष कलं न की ।।
महा मोक्ष सुमार्ग, अहं नुं कलं, मोक्ष कलं न की ।।
महा मोक्ष सुमार्ग, अहं नुं कलं, मोक्ष कलं न की ।।

(अथ)

मे प्रीति पूर्व की ओर जो ननु नुं कलं न की, अहं न भगदे, नुं कलं हे हने हूँ ।
महा प्रीति पूर्व की ओर जो ननु नुं कलं न की, अहं न भगदे, नुं कलं हे हने हूँ ।
महा प्रीति पूर्व की ओर जो ननु नुं कलं न की, अहं न भगदे, नुं कलं हे हने हूँ ।
महा प्रीति पूर्व की ओर जो ननु नुं कलं न की, अहं न भगदे, नुं कलं हे हने हूँ ।

(अथ)

मे प्रीति पूर्व की ओर जो ननु नुं कलं न की, अहं न भगदे, नुं कलं हे हने हूँ ।
महा प्रीति पूर्व की ओर जो ननु नुं कलं न की, अहं न भगदे, नुं कलं हे हने हूँ ।
महा प्रीति पूर्व की ओर जो ननु नुं कलं न की, अहं न भगदे, नुं कलं हे हने हूँ ।
महा प्रीति पूर्व की ओर जो ननु नुं कलं न की, अहं न भगदे, नुं कलं हे हने हूँ ।

(अथ)

मे प्रीति पूर्व की ओर जो ननु नुं कलं न की, अहं न भगदे, नुं कलं हे हने हूँ ।
महा प्रीति पूर्व की ओर जो ननु नुं कलं न की, अहं न भगदे, नुं कलं हे हने हूँ ।
महा प्रीति पूर्व की ओर जो ननु नुं कलं न की, अहं न भगदे, नुं कलं हे हने हूँ ।
महा प्रीति पूर्व की ओर जो ननु नुं कलं न की, अहं न भगदे, नुं कलं हे हने हूँ ।

शब्दार्थ

अगोट=मेल रहित, फूट ।

अच्युतच्चरण=तरंगिणी गंगा ।

अतुरीन=चंचल ।

अथवत=अस्त होता है ।

अधोरी=चँदवा या ओढ़ना ।

अनकीन्हीं बातें करें=विषय से अपरिचित होते हुए बकवाद करना ।

अनख=डाह, द्वेष ।

अनखन=डिठौना या काजल ।

अनखाना=अन्न खाये हुए, भरा पेट, बुरा मानना ।

अनखाय=बुरा मानते हुए, अकुलाते हुए ।

अनत=अन्यत्र ।

अनधन=परायी स्त्री ।

अनियारे=चुटीले, नुकीले ।

अपत=पत्रहीन ।

अमर बेल=आकाश बेल । जड़, पत्ते रहित सूत के समान पीली बेल । जिस वृक्ष पर होती है उसे सुखा डालती है ।

अमरैया=आम्रकुंज ।

अरसिया=दर्पण ।

अवध=अवधि, समय, मीयाद ।

अहटाय=पायजेब की आवाज तक न करना ।

अहर निसि=रात-दिन ।

आखर=अक्षर ।

आन=ध्यान ।

आसु=शीघ्र ।

इंदव-भाल=शिव (भाल पर चन्द्रमा धारण करने वाले) ।

उखारी=ईख का खेत ।

उचरि=उचटना ।

उनमान=परिमाण ।

उनहार=समानता ।

उपरिया=उपला ।

उमगै=उमंगित होना, उमड़ना ।

उरग=सर्प ।

उरज=उरोज ।

ऊगत=उदय होता है ।

ऊजरी=उज्ज्वल ।

ऊन=रंज ।

औसेर=उबटन, सिकल करने से पूर्व जो चिकनाई जाती है ।

अंक=कलंक, अपवाद ।

अंगवै=सहता है ।

अंड=अंडी या एरंड का पेड़ ।

कचपची=छोटे तारों का समूह, कृत्तिका नक्षत्र ।

कचन=बाल, केश ।

कठिहारी=लकड़हारिन ।

कत=क्यों ।

कमनैत=धनुर्धार ।

कमला=लक्ष्मी ।

कमाँगरी=धनुष बनाने (वाले कमानगर की स्त्री) वाली ।

करतार=स्रष्टा, विधाता ।

करी=हाथी, किया । गजेन्द्र-मोक्ष से पूर्व अन्य हाथी साथ छोड़ गये थे ।

करीर=करील ।

करुए मुख=कटुभाषी ।

करैटो=काँटा ।

कल्पवृक्ष=स्वर्ग का एक वृक्ष । समुद्र-मंथन में निकले चौदह रत्नों में से एक ।

कसौटी=सोने की परख का काला पत्थर ।

कहाँ सुदामा...जोग=कृष्ण और सुदामा की (असमान) मित्रता की ओर संकेत ।

कागदिन=कागज का व्यापार करने (वाले की स्त्री) वाली ।

काछिन=शाक, भाजी उगाने (वाले की स्त्री) वाली ।

कानि=आदर ।

किरकिरी=बालू-युक्त, व्यर्थ, वेइज्जती ।

किरण=कांति, शोभा ।

कुरंड=कारंडव, हंस ।

कूबर=हरसा, रथ का वह भाग जिस पर जुआ बाँधा जाता है, कुबड़ा ।
 केतिक=कितना ।
 कैथिन=कायस्थिन ।
 कोरिन=मोटा कपड़ा बुनने (वाले कोरी की स्त्री) वाली ।
 कौरी=रूठी हुई ।
 कौरी वैस=छोटी आयु की स्त्री ।
 कँगनिआ=कड़ा या कंगन ।
 कंचनी=साधारण वेश्या ।
 कंज=करंजा ।
 कंद=मिश्री ।
 कुदिन=कुंदीगरिन, वस्त्र पर कुंदी करने वाली, सोने-चाँदी के पत्तर पीटने (वाले की स्त्री) वाली ।
 खर=तिनका या घास ।
 खाट=शब्द ।
 खीस=व्यर्थ ।
 खैर=कल्या ।
 खोरि=दोष ।
 गजक=चीखना ।
 गजपाय=गजपाल, महावत ।
 गजरवा=गजरा या माला ।
 गड़ही को पानि=छोटे गड्डे का पानी ।
 गडुवा=टोंटीदार, जल-पात्र जिसकी गर्दन पतली होती है ।
 गथ=पूँजी या कोष ।
 गरज=स्वार्थ ।
 गरुए=गंभीर, अन्न ।
 गवनवाँ=द्विरागमन, गौना ।
 गाढ़ि=अकाट्य, अनुल्लंघनीय ।
 गाढ़े=बुरे ।
 गाँठ=ईख की गाँठ, मनोमालिन्य ।
 गाँधिन=इत्र और सुगन्धित तेल बेचने (वाले गंधी की स्त्री) वाली ।
 गाँस=गाँठ, मिलावट, मनोमालिन्य ।
 गाँसी=तीर, बरछी ।
 गुन=गुण, धागा, रस्ती ।
 गुराइसु=गुरु अर्थात् बड़ों की आज्ञा ।

गुलियाना=गोला बनाकर बलपूर्वक मुँह में डालना ।

गेह=घर ।

गेन=दिन ।

गैर=(अरबी-गैर) शत्रुता, बैर ।

गोइअवाँ=सखियों का ।

गोत=गोत्र ।

गोय=छिपाना ।

गोरस=दही, इन्द्रिय सुख ।

गोहन=गोशाला या खिरक ।

गोहने या गोहनै=संग ।

घइलन=गगरी, जलपात्र ।

घरिअलवा, घरियाल=घड़ियाल, काँसे का घंटा ।

घासिन=घसियारिन, घास बेचने (वाले की स्त्री) वाली ।

घुरवा=घोर, गरजा ।

घूरे=घूड़ा ।

चखटोना=आँखों से जादू करने वाली ।

चवाव=झूठी बातें ।

चिरवादारिनी=साईस की स्त्री ।

चितसरिया=चित्रशाला ।

चीतावनी=चीता पालने (वाले की स्त्री) वाली ।

चूहरी=मेहतरानी, चंडालिन ।

चेटुवा=चिड़िया का बच्चा ।

चाटार=तेज, चोखी ।

चोरी करि होरी रची=चोरी करके होरी का ईधन इकट्ठा किया जाता है ।

छाला=चमड़ी, शरीर ।

छिंगुरिया=कनिष्ठ अंगुली ।

छितव=पृथ्वी ।

छितिखनि=पृथ्वी खोदती है ।

छीपन=कपड़ा छापने (वाले छीपी की स्त्री) वाली ।

छोहरिया=लड़की ।

जक=लज्जा, हार, भय, रट ।

जम के किंकर=यमराज के दूत ।

जमनियाँ=रात ।

जरझकिनी=नीचे देखने वाली, धन चाहने वाली ।

जरतरिआ=जरी का, रुपहले तारों का ।
 जरदी=जर्दी, पीलापन ।
 जरु=जलते हैं ।
 जबकवा, जावक=महावर ।
 जहरि=पैर का घुँघरूदार आभूषण ।
 जीरन=जीर्ण, पुराना ।
 जुकिहारी=जोंक लगाने वाली ।
 जुरुते=तत्काल ।
 जोखिता=(सं.-योषिता) स्त्री, योगीपन ।
 झँपहि=ढँक लेता है ।
 टूटे=रुष्ट, कुपित, बिगड़े ।
 टेसू=ढाक, पलाश ।
 टोटे=अभाव, नुकसान, निर्धनता ।
 टोरि=तोड़ना ।
 टोलवा=टोले में या मुहल्ले में ।
 ठठेरिनी=वर्तन बनाने (वाले ठठेरे की स्त्री) वाली ।
 डसाय=बिछाकर ।
 डाँडी मारना=कम तोलना ।
 ढिंग=पास ।
 ढेंकुली=चकलिया, जिससे कुएँ में रस्सी डाली और खींची जाती है ।
 ढोठनवा=पुत्र ।
 डफालिनी=डफ, ताशा की मरम्मत करने (वाले की स्त्री) वाली ।
 तकब=देखूँगा ।
 तबाखिनी=थाल में खाद्य वस्तु रखकर बेचने (वाले की स्त्री) वाली ।
 तरकि=बिगड़ना, झुँझलाना ।
 तरैयन=तारे ।
 ताइकै=गर्म करके ।
 तातों=जलता हुआ ।
 तासीर=प्रभाव, प्रकृति ।
 तितही=उतना ही ।
 तिरियवा=स्त्रियाँ ।
 तुरकिन=तुर्क जाति की स्त्री ।
 तुरंग=घोड़ा ।
 तुरिय=तुरीयावस्था, मोक्ष ।

थोथे=दिखावटी, निस्सार ।
 थोपिन=मिट्टी थोपने वाली स्त्री ।
 दधीचि=वृत्रासुर से देवताओं की रक्षा के लिए, इस दानी ऋषि ने, वज्र बनाने के लिए अपनी हड्डियाँ दे दी थीं ।
 दवगारिन=कुप्पा बनाने (वाले की स्त्री) वाली, ढाल बनाने (वाले की स्त्री) वाली ।
 दमरी=दमड़ी, दस कौड़ी ।
 दमामा=धौंसा, बड़ा नगाड़ा ।
 दर-दर=द्वार-द्वार ।
 दवत=जलाती है ।
 दवरिया=दावाग्नि, जंगल की आग ।
 दौव=समान, इच्छानुकूल ।
 दीबो=देना ।
 दीरघ=दीर्घ, बड़ा ।
 दुति=द्युति, कान्ति, प्रकाश ।
 दुचिति=घबराई हुई ।
 दूवर=दुर्बल ।
 देवरा=भूत-प्रेत ।
 धनिया=स्त्री ।
 धाधवे=देखने के लिए ।
 न उबरै=किसी काम का न रहना ।
 नटनंदनी=नट की बेटी ।
 नरद=जुड़वाँ गोटी (शतरंज में ऐसी गोटी पृथक्-पृथक् नहीं, एक साथ पिटती हैं) ।
 नवा=झुका हुआ ।
 नाँधनि=प्रारंभ करना, लगाना ।
 नालबंदिन=घोड़े के सुम में नाल बाँधने (वाले की स्त्री) वाली ।
 नारि के वेश=अज्ञातवास में विराट के यहाँ अर्जुन का वृहन्नला के रूप में रहने का संकेत ।
 नारायण हू को भयो=राजा बलि की कथा की ओर संकेत, जिसमें विष्णु को बामनावतार धारण करना पड़ा था ।
 निचवई जोय=नीचे की ओर ।
 निहोरवा=देखा, निहोरे (विनय) करना ।
 नेरे=पास ।
 नैं चलो=नम्रता से व्यवहार करो ।
 पछोरना=फटकारना ।
 पटवन=पटवा (वस्त्र गूँथने वाले) की स्त्री, वस्त्र गूँथने वाली ।

पठानी=पठान जाति की स्त्री ।
 पन्नग बेलि=नाग बेलि, पान की बेल ।
 पयान=हट जाना ।
 परबिनवा=प्रवीण, चतुर ।
 परि खेत=युद्धभूमि में गिरकर ।
 परलेउ भोर=सबेरा कर दिया ।
 पवढ़हु=पौढ़हु, सोओ ।
 पसरि=फैलकर ।
 पाटम्बर, पाटंबर=(सं.—पीताम्बर) पीला वस्त्र ।
 पातुरी=वेश्या ।
 पाथ=जल ।
 पान=पाणि, हाथ ।
 पानी=जल, प्रतिष्ठा, मोती की चमक ।
 पारि=डालना, डुबोना ।
 पिपीलिका=चींटी ।
 पियरवा=प्रीतम ।
 पुरुष पुरातन=विष्णु, वृद्ध ।
 पेक पायक=फेरी वाला, टुटपूँजहा व्यापारी ।
 पेखि=देखकर ।
 फवै=शोभा देना ।
 फजीहत=दुर्दशा, बदनामी ।
 फरजी=वज़ीर (शतरंज का मोहरा)
 फल=स्तन ।
 फुंदना=रेशम आदि का झब्बा ।
 फूंदी=इज़ारबन्द ।
 बइरिनिया=वैरिन ।
 बगर=बड़ा मकान या महल ।
 बढ़े=युवावस्था, दीपक बढ़ाना (बुझाना) ।
 बतौरी=रसौली, रोग विशेष जिसमें रक्त संचित होकर, पीड़ा रहित गाँठ बन जाता है ।
 बनजारी=बनजारिन, बनजारे (घुमन्तू जाति) की स्त्री ।
 बरइन=तमोलिन ।
 बरहि=बट वृक्ष ।
 बरी=उर्द की दाल की बनी बड़ी ।
 बरेह या बरोह=बरगद की जटाएँ ।

बरेगो=प्रशंसा करेगा ।

बरोठवा=बैठक में ।

बलाकिन=बगुलियाँ ।

बहरी=शिकारी पक्षी ।

बहसनि=वाचालता ।

बाजदारिनी=बाज पक्षी पर नियुक्त सेवक की स्त्री ।

बाजीगरिन=जादू का खेल दिखाने (वाले जादूगर या बाजीगर की स्त्री) वाली ।

बाजू=भुजा ।

बाट=बाजार, रास्ता ।

बार=देर ।

बारे=बालपन (शैशवावस्था), बालना (जलाना)

बाय खेंचना=श्वास लेना, अहंकार करना ।

बावन=विष्णु का बावनावतार, जो बावन अंगुल का था । दैत्यराज बलि से तीन पग पृथ्वी का दान माँगकर, विराट रूप धारण करके तीनों लोक नाप लिये थे ।

विआधि=व्याधि, विपत्ति ।

बिकरार=बेचैन ।

बिजन=पंखा ।

बियुरे=छिटके हुए ।

बिरिया या बेरिया=समय, बार ।

बिलमाय=फँसाना या लुभाना ।

विसात=सामर्थ्य ।

विहाय=बीतना ।

बीरी=पान की लालिमा ।

वेइलिया=लता ।

वेझा=बेधक, छेद करने का औजार, बर्मा ।

बेर-केरु=बेर और केला ।

बेलन=बेला के फूल ।

बेसहिया=क्रय करना ।

बौड=भ्रम में पड़ी, बौराई, पागल ।

वंस दिया=आकाश दीप ।

भरत=भरण-पालन करना ।

भाइ=प्रेम ।

भाटा=वेंगन ।

भाटिन=भाट की स्त्री ।

भार=बोझा

भिनुसार=प्रभात, प्रातःकाल ।

भीत=दीवाल ।

भेषज=औषधि ।

भौर=जलती हुई धूल ।

भँगेरिनी=भोंग वेचने वाली ।

भँवरी=विवाह के अवसर पर ली जाने वाली सप्तपदी ।

भृगु मारी लात=विष्णु की सहनशीलता व महानता को परखने के लिए भृगु ऋषि द्वारा मारी गई लात ।

मख=यज्ञ ।

मगरु स्थान=मगध देश । ऐसा माना जाता है—काशी में मुक्ति होती है । 'भक्तमाल' की एक कथा के अनुसार—एक पुरुष काशी में रहने लगा । वहीं रहने को उसने हाथ-पैर काट लिये किन्तु उसका चंचल घोड़ा उसे मगध देश ले गया ।

मधुकरी=भीख ।

मसमथांगी=काम-पीड़ित ।

मड़ए तर की गाँठि=विवाह मंडप में वर-वधू को लगाई जाने वाली गाँठ ।

मनसा=मंशा, इच्छा ।

मया=प्रेम ।

मरहा=जंगल का भूत । बाघ द्वारा मृत की आत्मा पूजी जाती है ताकि अगले जीवन में नरभक्षी न बन सके ।

मरुके=कठिनाई से ।

मसिकरिन=रोशनाई बनाने (वाले की स्त्री) वाली ।

महि नभ सर पंजर किया=इन्द्र से खाण्डव-वन की रक्षा के लिए अर्जुन द्वारा धरती से आकाश तक बाणों का लगाया पिंजड़ा ।

मातंग=श्वपच, अस्पृश्य ।

मास चखाइ कै=शारीरिक सौंदर्य दिखाकर ।

माह=माघ ।

मुकुरि=अस्वीकार करना, नटना ।

मुनि पतनी तरी=राम द्वारा गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या के उद्धार की कथा ।

मुरवा=मोर ।

मुसकला=धातु चमकाने के लिए मसाला रगड़ने का औज़ार ।

मुँह स्याह=खिज़ाब लगाना ।

मुहार=ऊँट की नकेल ।

मूरा=बड़ी मूली ।

मेख=खूँटी ।

मैके=मायके, माता का घर ।

मैन-तुरंग=मोम का घोड़ा ।

मोगरी=काठ का हथौड़ा ।

मंदन=खल, दुष्ट ।

यारी=मित्रता, मोह, ममता ।

रङ्गनियाँ=रात ।

रमसरा=रामसर का पौधा । गन्ने जैसे सरकंडे वाला यह पौधा ईख के खेत में अपने आप पैदा हो जाता है । इसमें रस नहीं होता ।

रहसनि=काम क्रीड़ा ।

रहिला=मड्डुआ या चना ।

रहँट=कुएँ से जल निकालने का यंत्र ।

रिनिया=ऋण देने वाला ।

रीते=सूखे, भूखे, रिक्त ।

रूख=वृक्ष ।

रेख=पत्थर की लकीर, निश्चय ।

रौल=हुल्लाड़, आंदोलन ।

लटी=बुरी ।

लसकरी=लश्करी, सैनिक ।

लहरिया=लहरदार ओढ़ने का वस्त्र ।

लुगरा=वस्त्र ।

लुब्धी=लालची ।

लुहारि=लुहारिन, लुहार की स्त्री ।

लुहार=लौह के समान, रक्तरंजित ।

लेजू=रस्सी, रज्जु ।

लेह=चीरना ।

लोइन=लोचन, नेत्र ।

लौन=लावण्य ।

व्यावर=प्रसूति की ।

विप भैया=विष का भाई अर्थात् चन्द्रमा । समुद्र-मंथन में दोनों का समुद्र से एक साथ जन्म ।

विभासै=विभास-राग ।

विष खाय के...जगदीश=समुद्र-मंथन से निकले हलाहल के पान से सम्बन्धित शिव की कृपा की ओर संकेत । हलाहल से जगत् की रक्षा करने के कारण जगदीश कहलाये ।

- विषया=व्यसन, आसक्ति ।
 विषान=(सं.-विषाण) सींग ।
 वैशिक=वेश्यागामी ।
 शाह=बादशाह, शतरंज का मोहरा ।
 शिव-वाहन=बैल ।
 शिवि=काशिराज शिवि की दानशीलता की कथा प्रसिद्ध है । बाज (इन्द्र) से कबूतर (अग्नि) की रक्षा के लिए अपने शरीर का मांस काटकर दे दिया । फिर भी पलड़ा भारी रहा तो सिर काटने को उद्यत हो गये थे ।
 सक्कनि=भिश्तिन, पानी भरने वाले (भिश्ती) की पत्नी ।
 सचान=श्येन पक्षी, बाज ।
 सतराइ=चिढ़ना, कोप करना ।
 सफरिन=मछली ।
 सबनीगरिन=साबुन बनाने (वाले की स्त्री) वाली ।
 सम्पुटी=पानी की घड़ी का पात्र (कटोरी)
 सरग-पताल=अंड-बंड, कुबोल ।
 सरव=पुरवा, मिट्टी का जल-पात्र, सकोरा ।
 सरवर=बराबरी ।
 सरवानी=ऊँट हाँकने वाले की स्त्री ।
 सरीकन=छड़ ।
 सही=साईस ।
 सहेटवा=संकेत-स्थल ।
 सान=तेज ।
 सिकलीगरिन=धातु को चमकाने (वाले की स्त्री) वाली ।
 सिराहिं=समाप्त होना, मिटना ।
 सिलसिली=फिसलने वाली ।
 सुनारि=सुंदर स्त्री, सुनारिन (सुनार की स्त्री) ।
 सुरंग=लाल ।
 सुवन-समीर=वायु पुत्र, हनुमान ।
 सेल्ह=बर्छा, भाला ।
 सेंहुड़=लम्बे पत्ते वाला पौधा, जिसकी तासीर गर्म होती है । प्रायः बच्चों को दिया जाता है ।
 सैना=आँखों का संकेत ।
 सोस=(फ़ारसी-अफ़सोस) शोक, दुःख ।
 हरि हाथी सो कब हती=गज-ग्राह की कथा की ओर संकेत । विष्णु ने मगर की पकड़ से हाथी को मुक्त कराया था ।

हरुए गवन=धीमी चाल से ।

हलुकन=छिछोरे, भूसी ।

हवाल=स्थिति ।

हरि कै=विहल होकर, गिड़गिड़ा कर ।

हूक=याद, नस के टूट जाने पर उत्पन्न चमक ।

हेरत=देखते हुए ।

हेरनहार=खोजने वाला, देखने वाला ।

नगर-शोभा के दोहों से मिलते-जुलते कुछ बरवै मिले हैं, जिनमें से चार यहाँ उद्धृत हैं :

ऊँच जाति ब्रह्मनिया बरनि न जाय ।

दौरि दौरि पालागी सीस छुआय ॥ 1 ॥

बड़ि बड़ि आँखि बरुनिया हिय हरि लेत ।

पतरी के अस डोब करजवा देत ॥ 2 ॥

सुंदरि तरुनि तमोलिनि तरवन कान ।

हेरे हँसै हरै मन फेरे पान ॥ 3 ॥

कलवारी मदमाती काम कलाल ।

भरि भरि देय पियलवा महा ठोल ॥ 4 ॥

ग्रन्थ-सूची

जीवनी के लिए प्रयुक्त संदर्भ-ग्रन्थ

1. अकबरनामा, भाग 1,2,3, अबुलफज़ल, अनु. ब्रलाकमैन, 1873।
2. हुमायूँनामा, गुलबदन बेगम, अनु. ब्रजरत्नदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, हि.सं., 1951।
3. तबकाते अकबरी, भाग 1,2,3, निजामुद्दीन, अनु. दे, 1936।
4. आइने-अकबरी, भाग 1,2,3, अबुलफज़ल, अनु. ब्रलाकमैन, 1873।
5. तुजुके जहाँगीरी, जहाँगीर, भाग 1 व 2, अनु. अलेक्जेंडर रोजर्स, 1904, 1914।
6. मेमोरीज ऑफ द एम्परर जहाँगीर, जहाँगीर, अनु. मेजर डेविड प्राइस, बंगवासी प्रेस, कलकत्ता, 1904।
7. मआसिरे रहीमी, अब्दुलबाकी, भाग 1,2,3, सन् 1925, 1930।
8. खानखानानामा, मुंशी देवी प्रसाद, भारत मित्र प्रेस, कलकत्ता, 1909।
9. मुआसिरुल उमरा, नवाब समसामुद्दौला शाहनवाज खाँ, अनु. ब्रजरत्नदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, भाग 1 व 2, 1929, 1938।
10. अकबरी दरबार, भाग 1, 2, 3, आज़ाद, अनु. रामचन्द्र वर्मा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1924, 1930, 1936।
11. अकबर द ग्रेट मुगल, श्री विंसेण्ट स्मिथ, 1919।
12. द एम्परर अकबर, अगस्ट्स फ्रेड्रिक, 1941।
13. द कैम्ब्रिज हिस् ऑफ इंडिया, 1938।
14. ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ इंडिया, डॉ. ईश्वरी प्रसाद, 1936।
15. महान् मुगल अकबर, विंसेण्ट स्मिथ, अनु. राजेन्द्रप्रसाद नागर, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ, 1967।
16. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग 5, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1974।
17. तारीख-ए-बदाउनी, अनु. ब्लाखमान, हेग।
18. तारीख-ए-फिरिश्ता, अनु. ब्रिग्स, केम्बे, कलकत्ता, 4 खंड, 1908।

सम्पादन में प्रयुक्त आधार ग्रन्थ

1. रहिमान-विलास, सं. ब्रजरत्नदास, रामनारायणलाल बुकसेलर, इलाहाबाद। प्रथमावृत्ति, 1930।
2. रहिमान-विलास, सं. ब्रजरत्नदास, साहित्य सेवा सदन, बनारस, प्र.सं., 1923।
3. रहीम रत्नावली, सं. मायाशंकर याज्ञिक, साहित्य सेवा सदन, बनारस, प्र. सं., 1928।
4. रहिमान-विनोद, सं. अयोध्याप्रसाद शर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्र.सं., 1927।
5. रहीम-कवितावली, सं. सुरेन्द्रनाथ तिवारी, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, प्र. सं., 1926।
6. रहिमान-नीति-दोहावली, सं. पं. लक्ष्मीनिधि चतुर्वेदी, अग्रवाल साहित्य सदन, प्रयाग, प्र. सं. 1932।
7. रहीम, सं. रामनरेश त्रिपाठी, हिन्दी मंदिर, प्रयाग, प्र. सं., 1921।
8. रहिमान शतक, सं. सूर्यनारायण त्रिपाठी, खेमराज श्रीकृष्ण दास, बम्बई, 1909।
9. कविता-कौमुदी, पहला भाग, सं. रामनरेश त्रिपाठी, साहित्य भवन, प्रयाग, द्वि. सं., 1918।
10. रहिमान शतक, सं. रामलाल दीक्षित, हिन्दी प्रभा प्रेस, लखीमपुर, प्र.सं., 1898।
11. रहिमान शतक, सं. सूर्यनारायण दीक्षित।
12. रहिमान शतक, सं. लाला भगवान दीन।
13. रहिमान शतक, प्र.ज्ञान भास्कर प्रेस, बाराबंकी।
14. रहिमान शतक, प्र.शारदा प्रेस, कानपुर।
15. रहिमान शतक (दो भाग), प्र. बम्बई भूषण यंत्रालय, मथुरा।
16. रहीम-रत्नाकर, सं. उमरावसिंह त्रिपाठी।
17. बरवै नायिका भेद, सं. नकछेदी तिवारी, भारत जीवन प्रेस, कानपुर, 1892।
18. खानखानानामा, मुंशी देवीप्रसाद, भारतमित्र प्रेस, कलकत्ता, 1909।
19. विजय हज़ारा, मौ. अबुलहक।
20. खेत कौतुकम्, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।
21. खेत कौतुकजातकम्, नवाब खानखाना, टीकाकार पं. नारायणप्रसाद, सीताराम शर्मा, 1939।
22. भड़ौआ संग्रह—सं. नकछेदी तिवारी।
23. रहिमान चन्द्रिका, सं. रामनाथलाल सुमन।
24. रहिमान-विलास, राधाकृष्ण दास रचित रहीम के दोहों पर कुंडलियाँ

हस्तलिखित ग्रंथ

25. रहीम की दोहावली (मिश्रबन्धुओं की हस्तलिखित प्रति)
26. नगर शोभा (मेवात से प्राप्त हस्तलिखित प्रति)
27. बरवै नायिका भेद (असनी से प्राप्त हस्तलिखित प्रति)
28. बरवै नायिका भेद (काशी नरेश वाली प्रति)

सहायक ग्रंथ

29. शिवसिंह सरोज, शिवसिंह सेंगर
30. मिश्रबन्धु विनोद, भाग 1, मिश्रबन्धु त्रय ।
31. भक्तमाल, नाभादास और प्रियादास ।
32. मुआसिरुल उमरा, नवाब समसामुद्दौला शाहनवाज़ खाँ, अनु. ब्रजरत्नदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, भाग 1 व 2, 1929, 1938 ।
33. भक्तमाल प्रसंग, वैष्णवदास (हस्तलिखित)
34. दोहा सार संग्रह, सं. दाराशाह (") ।
35. गुणगंजनामा (") ।
36. प्रबोध रस सुधासागर—नवीन (") ।
37. रतन हज़ारा—रसनिधि ।
38. वाग्विलास, कृष्ण शर्मा, हरिप्रकाश यंत्रालय, काशी, 1901 ।
39. तुलसी ग्रंथावली, सं. माताप्रसाद गुप्त ।
40. मतिराम-ग्रंथावली, सं. कृष्णबिहारी मिश्र, प्र. गंगा पुस्तक माला, लखनऊ ।
41. कबीर ग्रंथावली, सं. माताप्रसाद गुप्त ।
42. वृंद-सतसई ।
43. चकता वंश की परम्परा (हस्तलिखित)
44. जस कवित्त (") ।
45. सुभाषितरत्नभांडागारम् ।
46. विविध संग्रह, सं. ठाकुर भूरिसिंह ।
47. हिन्दी शब्द सागर की भूमिका, रामचन्द्र शुक्ल ।

पत्रिकाएं

48. सम्मेलन पत्रिका, भाग 12, अंक 1 और 2 ।
49. समालोचक, भाग 1, अंक 2 ।
50. माधुरी, व. 3, खं. 2; सं. 2, व. 6, खं. 2, सं. 6 ।
51. मनोरमा, मई 1925 ।

34475



१. ... २३
२. ... २४
३. ... २५
४. ... २६
५. ... २७
६. ... २८
७. ... २९
८. ... ३०
९. ... ३१
१०. ... ३२
११. ... ३३
१२. ... ३४
१३. ... ३५
१४. ... ३६
१५. ... ३७
१६. ... ३८
१७. ... ३९
१८. ... ४०
१९. ... ४१
२०. ... ४२
२१. ... ४३
२२. ... ४४
२३. ... ४५
२४. ... ४६
२५. ... ४७
२६. ... ४८
२७. ... ४९
२८. ... ५०
२९. ... ५१
३०. ... ५२
३१. ... ५३
३२. ... ५४
३३. ... ५५
३४. ... ५६
३५. ... ५७
३६. ... ५८
३७. ... ५९
३८. ... ६०
३९. ... ६१
४०. ... ६२
४१. ... ६३
४२. ... ६४
४३. ... ६५
४४. ... ६६
४५. ... ६७
४६. ... ६८
४७. ... ६९
४८. ... ७०
४९. ... ७१
५०. ... ७२
५१. ... ७३
५२. ... ७४
५३. ... ७५
५४. ... ७६
५५. ... ७७
५६. ... ७८
५७. ... ७९
५८. ... ८०
५९. ... ८१
६०. ... ८२
६१. ... ८३
६२. ... ८४
६३. ... ८५
६४. ... ८६
६५. ... ८७
६६. ... ८८
६७. ... ८९
६८. ... ९०
६९. ... ९१
७०. ... ९२
७१. ... ९३
७२. ... ९४
७३. ... ९५
७४. ... ९६
७५. ... ९७
७६. ... ९८
७७. ... ९९
७८. ... १००
७९. ... १०१
८०. ... १०२
८१. ... १०३
८२. ... १०४
८३. ... १०५
८४. ... १०६
८५. ... १०७
८६. ... १०८
८७. ... १०९
८८. ... ११०
८९. ... १११
९०. ... ११२
९१. ... ११३
९२. ... ११४
९३. ... ११५
९४. ... ११६
९५. ... ११७
९६. ... ११८
९७. ... ११९
९८. ... १२०
९९. ... १२१
१००. ... १२२

३४४३२





रहीम का संवेदनशील एवं सचेतनशील व्यक्तित्व था। कूटनीति और युद्धोन्माद के विषम परिवेश ने उनकी संवेदनशीलता को नष्ट नहीं किया था। इससे उनके अनुभव समृद्ध हुए हैं तथा मानव प्रकृति को समझने का अच्छा अवसर मिला है। वे स्वयं रचनाधर्मिता की ओर उन्मुख हुए ही, साथ ही अकबर के दरबार को कवियों और शायरों का केन्द्र बना दिया। अकबर की धार्मिक सहिष्णुता और उदारवादी नीति ने उन दरारों को पाटने का कार्य किया जो दो सम्प्रदायों के बीच चौड़ी व गहरी होती जा रही थीं। रहीम जन्म से तुर्क होते हुए भी पूरी तरह भारतीय थे। भक्त कवियों जैसी उत्कट भक्ति-चेतना, भारतीयता और भारतीय परिवेश से गहरा लगाव उनके तुर्क होने के अहसास को झुठलाता सा प्रतीत होता है।

ग्रन्थालय (Granthawali)

www.vaniprakashan.com

प्रसन्न गुं



वाणी प्रकाशन

एक प्रकाशक का कर्तव्य है कि वह अपने कर्तव्य को पूरी निष्ठा और ईमानदारी से निभाए।
Vani Prakashan's registered office is situated at:
10/10, Gurgaon, Haryana



₹235

vaniprakashangroup

VaniPrakashanBooks

Vani_Prakashan

Vani Prakashan Group

प्रकाशक : वाणी प्रकाशन